मंजरी

स्त्री के मन की

अक्टूबर, 2016

अंक–10

सीमाएं और संभावनाएं

पंचायत में महिलाओं की भागीदारी

Sulabh Sanitation Movement

Sulabh International
Social Service Organisation

दूध से हमने किया तैयार
हंसता-खेलता बिहार

सुधा
श्वेत समृद्धि

COMFED
बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि.
E-mail : comfed.patna@gmail.com, www.sudha.coop

सुधा
का नया UHT एलेकस्टर दूध पैक, बिना फ्रिजिंग
रहे अब 90 दिन तक, शुद्ध और ताजा

नजदीकी सुधा बूथ पर उपलब्ध

COMFED बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि. www.sudha.coop

Sudha
An alliance
with healthy life

Bihar/Jharkhand's No.1 Dairy brand
Sudha
सेहत, स्वाद, अनगिनत खुशियाँ

COMFED BIHAR STATE MILK CO-OPERATIVE FEDERATION LTD.
E-mail: comfed.patna@gmail.com, Website: www.sudha.coop

SHAHAD

ये दूध नही दम है,
पियो जितना कम है।

Sudha
सेहत,स्वाद,अनगिनत खुशियाँ

Best Brand Best Milk

COMFED बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि.
E-mail : comfed.patna@gmail.com www.sudha.coop

COMFED बिहार स्टेट मिल्क को-ऑपरेटिव फेडरेशन लि.

उत्कृष्टता, आनंद और सफलता का उत्सव

हम आज जिस मुकाम पर हैं उसका सारा श्रेय हमारी कर्मठ श्रमशक्ति को जाता है। सतत विकास के माध्यम से उत्कृष्टता की खोज करने में नवाचार और प्रतिभा के क्षेत्र में हमारे समर्पित पेशेवर ही हमें दूसरों से आगे रहने में सक्षम बनाते हैं। आज पावरग्रिड के पास पारेषण क्षेत्र और ग्रिड प्रबंधन में सर्वश्रेष्ठ प्रतिभावान लोग कार्यरत हैं। हम गौरवशाली powergridians, ऊर्जा के पारेषण द्वारा लाखों लोगों के जीवन को सशक्त बनाते हैं। अतः, उत्कृष्टता और आनंद के साथ, वैश्विक स्तर पर पारेषण के क्षेत्र में अग्रणी बनने और अधिक से अधिक ऊर्जा के साथ भारत की सेवा करने हेतु हम, ***powergridians* सदैव प्रतिबद्ध हैं।**

पावरग्रिड नेटवर्क, संक्षेप में

- विद्युत पारेषण के माध्यम से राष्ट्र को जोड़ना
- भारत की प्रमुख विद्युतीय ऊर्जा पारेषण कंपनी
- वैश्विक स्तर पर पाँचवीं सबसे तेज प्रगतिशील विद्युत कंपनी
- भारत के अंतर्राज्यीय और अंतर-क्षेत्रीय विद्युत पारेषण प्रणाली के 90% से अधिक का स्वामित्व और संचालन
- 1994 के बाद से प्रदर्शन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भारत सरकार द्वारा "उत्कृष्ट" रैंकिंग प्रदान की गई
- पावरग्रिड की पारेषण प्रणाली की उपलब्धता 99% से अधिक
- देश में उत्पन्न बिजली की 46% से अधिक का पारेषण पावरग्रिड के नेटवर्क द्वारा

पावरग्रिड

एक 'नवरत्न' कंपनी

एक राष्ट्र ग्रिड फ्रीक्वेन्सी

पंजीकृत कार्यालय: बी-9, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016 फोन नं: 011-26560122, फैक्स: 011-26601081
कॉर्पोरेट कार्यालय: सौदामिनी, प्लॉट नं. 2, सेक्टर-29, गुड़गांव, हरियाणा-122 001 (भारत) फोन नं: 0124-2571700-719, फैक्स: 0124-2571762,
ई मेल आईडी: powergrid@powergrid.co.in, सीआईएन: L40101DL1989GOI038121, www.powergridindia.com

संकल्पना

संकल्पना

इक्विटी फाउंडेशन लंबे अरसे से एक वेब पत्रिका शुरू करने के बारे में सोच रहा था। मकसद था महिला और समाज के मुद्दों को शिद्दत से उठाना। जब हमने चीजों को एक साथ कर उसे पत्रिका के रूप में सजाने के बारे में सोचना शुरू किया तो इस क्रम में कई लोगों से जुड़े। हमने महिलाओं को पत्रिका से जोड़ने की कोशिश की। हम दोस्तों से मिले और परिचितों से बात की। महिलाओं के सामाजिक समूहों और शिक्षाविदों के एक साथ जुड़ने के बाद जो स्वरूप सामने आया वह है 'मंजरी'।

मंजरी यानी कोंपल। शाखों में फूटने वाली नन्ही पत्तियां। नई शाखों का सृजन करने वाले इन कोंपल को कुम्हलाने से बचाना जरूरी है नहीं तो पूरे पेड़ का विस्तार कुंद हो जाएगा। ठीक उसी तरह स्त्री के मन की मंजरी को सहेजने की जरूरत है वरना पेड़रूपी समाज विकृति का शिकार हो जाएगा। हमारा प्रयास इसी मंजरी को पुष्पित पल्लिवत करने का है जो औरत की सोच और उसकी कोशिश को सही दिशा प्रदान कर सके।

मंजरी के सृजन के दौरान पहले तो 10–30 लोगों का एक ढीला–ढाला समूह बना। विचार आते गए। अलग–अलग विषयों और मुद्दों पर। समूह में कुछ अनमनी महिलाएं थीं तो कुछ सहानुभूति दिखाने वाले पुरुष भी। कुछ महज एक या दो बैठकों में शामिल हुए तो कुछ जब मन में आया, आ गए। बाकी बचे लोगों ने 'मंजरी' को मुकाम पर ले जाने का दायित्व अपने कंधों पर लिया। 'मंजरी' का लक्ष्य एक ऐसा मंच उपलब्ध कराना है जहां बुद्धिजीवियों को उनकी खुराक मिले तो शोधकर्ताओं की जिज्ञासा शांत हो। क्रियान्वयन के लिए बहस और तर्क के रास्ते हमेशा खुले रहें। इक्विटी की लगातार कोशिश रही है शोध और क्रियान्वयन के बीच की दूरी को पाटना। ऐसे में हमारा मानना है कि शोध तब तक अप्रासंगिक हैं जब तक कि इनका लोगों की जिंदगी और उनके क्रियाकलापों से जुड़ाव न हो। ठीक इसी तरह सिविल सोसायटी के तौर पर अगर हम जमीनी सच्चाई से वाकिफ न रहें, जिनमें सामाजिक प्रक्रियाएं और ऐतिहासिक मूल्यों का समावेश है और जो समाज में रहने वाले लोगों के मूल्यों और उनके चरित्र को आकार देते हैं, तो किसी भी कोशिश का कोई मतलब नहीं रहता है।

'मंजरी' एक उद्यम है, क्रियाशीलता को शोध आधारित रचना और आलोचना के नजरिये से देखने का जो महिला अधिकारों के साथ–साथ जीवन के हर पलू को इंगित करे। नियमित गैर सरकारी संगठनों और अकादमिक तंत्रों से इतर 'मंजरी' राजनीति और आदर्शवादिता को लांघ कर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सुधारों को सांस्कृतिक संवे. दनशीलता के आधार पर मापती है। 'मंजरी' उन तमाम कार्यकर्ताओं, विद्वानों, शिक्षाविदों, पत्रकारों, प्रोफेशनल, गृहणियों और नीति निर्धारकों द्वारा पढ़ी जाएगी जो किसी समस्या के लिए समाधान आधारित नवीन दृष्टि और पृथक सोच रखते हैं। यह पत्रिका अपने पाठकों को जेंडर आधारित मुद्दों को जैविक और सामाजिक आधार पर परखने की छूट देती है। व्यक्ति और समाज की विचारधारा में जेंडर को लेकर क्या बदलाव आये और उनका क्या असर हुआ, इसकी पूरी पड़ताल करने की आजादी लोगों को होगी। यह पत्रिका एक कोशिश है पड़ताल की प्रवृत्ति को जगाने की ताकि लोग तेजी से बदलते और विविधताओं से भरे समाज में पूरी क्षमता से काम करने को तैयार हो सकें जिसमें महिलाओं के प्रति भेदभाव भी एक अहम मुद्दा होगा। महिला समानता और अधिकारों पर 'मंजरी' के दखल से उन बेशुमार कार्यकर्ताओं, संगठनों और विद्वजनों को फायदा होगा जो दहेज, यौन प्रताड़ना, महिला अधिकारों, महिला आरक्षण, आर्थिक सुधार और अल्पसंख्यक समुदायों के निजी कानूनों में रुचि रखते हैं।

पत्रिका का मकसद

इक्विटी फांडेशन खुद को सुविधाविहीन महिलाओं को उनकी पूर्ण क्षमता से अवगत कराने और समाज में उनके क्रियाशील प्रभुत्व को स्थापित कराने की दिशा में वाहक के तौर पर देखता है। देश के विकास के हर क्षेत्र में महिलाओं की समान भागीदारी की राष्ट्रीय नीति तभी सफल हो पाएगी जब महिलाओं की भूमिका और उनके योगदान को कमतर आंकने वाले संस्थान और विचारों को हतोत्साति किया जाये या उनका पूरी तरह सफाया किया जाय। 'मंजरी' की परिकल्पना समाज और अर्थव्यवस्था में महिलाओं के जीवन और उनके स्तर को प्रभावित करने वाले विचारों के निर्माण, विकास और उनके प्रसार के लिए की गई है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के परिप्रेक्ष्य में समानता संबंधी मुद्दों को इस प्रकार समग्र रूप में देखने की जरूरत है जो असमानता की अंतरवर्गीय विशेषताओं को जाहिर कर सके। समानता पर आधारित 'मंजरी' के ज्यादातर आलेख भिन्न–भिन्न समूहों को निशाने पर रखते हैं जो कुछ हद तक बेद जरूरी भी है। इसलिए यह पत्रिका कुछ समूहों के कुछ विशेषाधिकारों के पूर्ण निष्कासन और अंतरवर्गीय दृष्टिकोणों के स्थापन के बीच नियंत्रक की भूमिका में होगी जो नीति निर्धारण और योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान असमानता को उसके तमाम स्वरूपों के साथ सामने रखने में कारगर होगी। ऐसे में इसका मकसद लैंगिक भेदभाव के निर्मूलन की ओर वह विवेचनात्मक चर्चा छेड़ने का है जो वर्तमान परिदृश्य में शोधों का एजेंडा तय कर सके और एक बेहतर वैकल्पिक प्रस्ताव का सृजन कर सके। अब तक यह संगठन कार्यशाला, कांफ्रेंस और अन्य सार्वजनिक आयोजनों के जरिये अपनी प्रतिबद्धता दर्शाता रहा है लेकिन अब इस पत्रिका के माध्यम से यह क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अतिथि लेखकों, जिनमें विद्वजन, अधिवक्ता, सरकार, पत्रकार, फिल्म निर्माता, कवि और सामाजिक कार्यकर्ता हैं, को जोड़ने की कोशिश कर रहा है।

संपादकीय

संरक्षण

पद्मश्री डा. उषा किरण खान
प्रख्यात लेखिका एवं साहित्यकार

मणिकांत ठाकुर
प्रख्यात पत्रकार

प्रो. भारती एस. कुमार
प्रोफेसर (सेवा.) इतिहास, पटना विवि

डा. रेणु रंजन
प्रोफेसर (सेवा.), समाज शास्त्र पटना विवि

प्रो. डेजी नारायण
प्रोफेसर, इतिहास, पटना विवि

परामर्श

मनीष कुमार
ब्यूरो चीफ, एन.डी.टी.वी. बिहार

कीर्ति
नेशनल कोऑर्डिनेटर, कैरीटास इंडिया (CARITAS INDIA)

डा. शरद कुमारी
प्रोजेक्ट ऑफिसर, एक्शन एड

सचिव, बिहार महिला समाज

अंजिता सिन्हा
पत्रकार

डा. मधुरिमा राज
लेखिका

भारत के एक राष्ट्र के रूप में जीवित रहने के लिए गांवों की विशिष्टता और उनकी केन्द्रीय महत्ता को महात्मा गांधी पहचान चुके थे। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि देश की मुक्ति का मार्ग गांवों के प्राकृतिक जीवन और उसके दैनन्दिन कार्यों के प्रबंधन से होकर ही जाता है। उन्होंने अपने सपनों के आदर्श गांव का जो खाका खींचा था वो आत्म निर्भर और स्वाधीन गांव थे। उन्होंने लिखा था कि ग्रामीण स्वराज की मेरी सोच ऐसे गांव से है जो अपनी मूलभूत जरूरतों के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो लेकिन साथ ही पारस्परिक महत्व की चीजों के लिए अपने पड़ोसियों पर निर्भर भी हो। इस प्रकार हर गांव के लिए जरूरी होगा कि वो अपने खाद्यान्न तथा वस्त्रों की जरूरतों को पूरी करने के लिए फसल का उत्पादन स्वयं करे। उसके पास अपने मवेशियों के लिए चारागाह तथा बच्चों एवं वयस्कों के लिए खेल के मैदान व मनोरंजन के स्थान मौजूद होंगे। हर गांव में अपनी एक नाट्यशाला, विद्यालय तथा सार्वजनिक भवन होंगे। उसके पास अपने लिए पीने के साफ पानी की व्यवस्था होगी और ऐसा कुओं और टंकियों पर नियंत्रण के द्वारा संभव हो सकेगा। बुनियादी शिक्षा सबके लिए अनिवार्य होगी। गांव में होने वाली हर गतिविधि सामुदायिक आधार पर कराई जा सकेगी। जात–पात और छुआछूत जैसी भावनाएं नहीं हो सकेंगी। सत्याग्रह और असहयोग के साथ अहिंसा गांवों के सामुदायिक जीवन की विशेषता होगी। हर गांव में चौकीदार अवश्य होंगे जो रोटेशन के आधार पर काम करेंगे।

इसके बाद भी गांधी ने अपनी सोच की पुनः पुष्टि करते हुए लिखा कि मैंने गरीबी से त्रस्त भारत की अवधारणा नहीं की है जिसमें लाखों लोगों की उपेक्षा की गई हो बल्कि मैंने ऐसे भारत की तस्वीर बनाई है जो अपनी प्रतिभा के अनुकूल तरक्की के पथ पर लगातार बढ़ता रहे। मैंने पश्चिम की मरती हुई सभ्यताओं की थर्ड क्लास या फर्स्ट क्लास नकल करने वाले भारत के बारे में भी नहीं सोचा है। अगर मेरा सपना सच हो जाए और देश के सात लाख गांवों में से हरेक अच्छी जीवनशैली वाला गणराज्य बन जाय जहां कोई अशिक्षित न हो, कोई बेरोजगार न हो, जहां सबको उसकी क्षमता के मुताबिक कार्य मिला हो, सबके पास स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन, हवादार मकान और पहनने के लिए जरूरत के मुताबिक खादी हो और जहां सभी को स्वच्छता और हाइजीन से जुड़े कानूनों तथा कर्तव्यों का ज्ञान हो, तो ऐसे राज्य की जरूरतें विविध प्रकार की और लगातार बढ़ती रहेंगी जिन्हें पूरा करने के लिए यह सदैव गतिशील रहेगा। ध्यान देने वाली बात ये है कि गांधी गांवों का सर्वांगीण विकास चाहते थे जो आत्मनिर्भर के साथ–साथ न्यायसंगत भी हो। किसी भी हालात में गांवों को गतिहीन और अंधविश्वासी नहीं होना चाहिए क्योंकि केवल इसी सूरत में शोषण और प्रभुत्व से मुक्त पूर्ण रोजगार प्राप्ति का लक्ष्य पाया जा सकेगा। इसके बाद ही निस्संदेह रूप से व्यक्तिगत और समूह की क्षमता का पूरा इस्तेमाल किया जा सकेगा।

गांधी भारतीय गांवों के प्रारंभिक लोकतांत्रिक चरित्र की पुनर्स्थापना चाहते थे। उन्होंने गांवों में शासन की एक नई प्रणाली की अवधारणा सामने रखी जिसे वे ग्रामीण स्वराज या पंचायती राज कहा करते थे। इसका मकसद गांवों में शासन की ऐसी प्रणाली को विकसित करना था जो पहले से मौजूद प्रजातंत्र को बुनियादी इकाई के रूप में स्थापित कर सके। ये ठीक है कि गांधी ने ग्रामीण शासन का संपूर्ण ब्लूप्रिंट प्रस्तुत नहीं किया था लेकिन उन्होंने उसकी मूलभूत बातों को सामने रख दिया था। उन्होंने ग्रामीण शासन के अपने विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया था ''गांव का प्रशासन पांच लोगों की पंचायत द्वारा चलाया जाएगा जिन्हें वयस्क ग्रामीण, स्त्री तथा पुरुष, मिलकर एक वर्ष के लिए चुनेंगे और जिनके लिए न्यूनतम योग्यता निर्धारित की जा सकेगी। उनके पास हर प्रकार की सत्ता और न्याय की ताकत होगी।''

हमारी बात

मुख्य संपादक

नीना श्रीवास्तव

संपादक

दीपिका झा

शोध

नीना श्रीवास्तव
दीपिका झा

प्रबंधन/व्यवस्था

राहुल कुमार

प्रकाशन

इक्विटी फाउंडेशन

सहयोग

सुलभ इंटरनेशनल
सुधा डेयरी
पावरग्रिड कार्पोरेशन
द ऑफसेटर, पटना
बंसल ट्यूटोरियल, पटना
इंटरनेशनल स्कूल, पटना

संपर्क

इक्विटी फाउंडेशन
123 ए, पाटलीपुत्र कॉलोनी
पटना, 13
फोन : 0612-2270171

ई–मेल
equityasia@gmail.com
वेबसाइट
www.emanjari.com

© इक्विटी फाउंडेशन

गांधी ने अपने पूरे सार्वजनिक जीवन में गांवों में लोकतंत्र को मजबूत बनाने पर जोर दिया। आजादी की पूर्व संध्या पर देश ने संसदीय प्रणाली को अपनाया था लेकिन स्थानीय स्वशासन को लेकर नई सोच करीब चार दशक बाद ही देखने को मिल सकी जब संविधान में 73वां और 74वां संशोधन किया गया और जिसे 1993 में लागू कराया जा सका। इसने पंचायती राज को लेकर कुछ आधारभूत दिशा–निर्देश जारी किये जिनका बाद में कई राज्य सरकारों ने अपने यहां के कानूनों में पालन किया।

इन ऐतिहासिक परिस्थितियों को देखा जाय तो कहा जा सकता है कि 1992 का 73वां संशोधन एक्ट, जिसने सभी पंचायत परिषदों तथा मुखिया एवं सरपंचों के चुनाव में एक–तिहाई सीटों को महिलाओं के लिए आरक्षित किया था, महिलाओं के राजनीतिक उत्थान की दिशा में मील का पत्थर साबित हुआ। इसने 1992 के ही 74वें संशाधन एक्ट का रास्ता भी साफ कर दिया जिसके बाद नगर पालिकाओं तथा निगमों में भी महिलाओं के लिए आरक्षण की घोषणा कर दी गई। इसके साथ ही बिहार पहला ऐसा राज्य बना जिसने अपने यहां महिलाओं के आरक्षण को बढ़ाकर 50 फीसद कर दिया और उसका अनुसरण मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान और हिमाचल प्रदेश ने भी किया। वर्तमान में बिहार के कुल चुने हुए जनप्रतिनिधियों में से 54 प्रतिशत महिलाएं हैं। आंकड़ों के आधार पर भारत ये कह सकता है कि उसके पास पूरी दुनिया की कुल चुनी हुई महिला प्रतिनिधियों से ज्यादा महिला जनप्रतिनिधि हैं। पंचायती राज मंत्रालय के 2006–07 के मध्यावधि मूल्यांकन रिपोर्ट के मुताबिक, हमारे यहां करीब 10 लाख महिला जनप्रतिनिधि हैं जो कुल जनप्रतिनिधियों का 37 प्रतिशत हैं। इसके अलावा हमारे देश में करीब 80 हजार महिला मुखिया हैं। लेकिन इन सबके बावजूद महिलाओं का राजनीतिक सशक्तीकरण अभी भी बाधाओं से भरा है और इसमें बढ़ोतरी ही होती जा रही है। महिलाओं के खिलाफ राजनीतिक हिंसा बढ़ी है। उन्हें पीटा जाता है, उनके साथ बलात्कार होते हैं और यहां तक कि उनकी हत्या तक कर दी जाती है। उन्हें प्रताड़ित करने के लिए कई बार उनकी आंखों के सामने उनके बच्चों की भी हत्या कर दी जाती है।

उपरोक्त तमाम कठिनताओं के बाद भी इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि पंचायती राज व्यवस्था पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ा है। इसने ग्राम सभा की ओर लोगों को फिर से मोड़ा है। ये पहली बार हुआ जब ग्रामीण शासन में लोगों को सकारात्मक संकेत मिले। इसने गांवों में निर्णय लेने की प्रक्रिया से महिलाओं और अन्य कमजोर वर्ग को जोड़ा। इस प्रकार ग्रामीण पंचायती व्यवस्था ने लोगों के आत्मविश्वास को जगाकर लोकतंत्र को जमीनी स्तर पर स्थापित किया है। लोगों का उनके जीवन पर नियंत्रण कई तत्वों पर निर्भर करता है जिसमें शिक्षा की भूमिका सबसे अहम है। ऐसे कई उदाहरण हैं जहां आम लोगों ने पंचायती राज व्यवस्था से आगे जाकर भी अपनी सत्ता के लिए संघर्ष किया है। पूर्वी महाराष्ट्र के नक्सल प्रभावित गढ़चिरौली जिले का सुदूर मेंढ़ा लेखा गांव इसका अच्छा उदाहरण है। यह देश का पहला ऐसा गांव है जहां के आदिवासियों को आस–पास के जंगलों में उगाए गए बांस को बेचने का अधिकार प्राप्त है। महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले का रालेगन सिद्धी आम जनों की सहभागिता से विकसित एक और गांव है। दक्षिणी राजस्थान की पिपलान्त्री पंचायत कल्याणकारी कार्यों में लगी है। पिछले कई वर्षों से यह पंचायत बालिकाओं को बचाने और हरित गांव बनाने के काम में जुटी है। इसी तरह अहमदनगर का हिबरे बाजार अपनी सिंचाई प्रणाली और जल संरक्षण कार्यक्रमों के लिए जाना जाता है जिसके माध्यम से इसने अकाल और पीने के पानी की समस्या पर काबू पाया।

इसी तरह कुछ राज्यों, जैसे केरल ने, गांव के स्तर पर विकेन्द्रीकृत शासन की स्थापना कर बड़ा योगदान दिया है। केरल ने 1996 में आम लोगों को गांवों के विकास और योजनाओं से जोड़ने की अवधारणा को जन्म दिया। यह प्रयोग अब तक देश के किसी भी गांव में नहीं किया जा सका था। ध्यान देने वाली बात ये है कि ग्रामीणों को विकास योजनाओं के विभिन्न चरणों से अवगत कराने के लिए करीब एक लाख लोगों को स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षित किया गया था।

हमारी बात

चाहें जीतें या हारें, आरक्षण अथवा ज्यादा से ज्यादा महिलाओं को राजनीति में प्रवेश के लिए प्रोत्साहित करना, इस बात की स्वीकृति प्रदान करता है कि महिलाओं को भी शासन में भागीदार बनने का समान अधिकार है। अगर समाज की यह सोच कि महिलाओं को घर के भीतर ही रहना चाहिए, औरतों को राजनीति में आने से रोकती है तो उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए सक्रिय रूप से दखल देना होगा। यही कारण है कि उन्हें आरक्षण की जरूरत है। लेकिन केवल ज्यादा संख्या में चुनकर आ जाने का कोई मतलब नहीं होगा जब तक कि भागीदारी की प्रक्रिया में महिला और पुरुषों को समान नजरिये से नहीं देखा जाएगा। महिलाओं को तभी वास्तविक रूप से सशक्त माना जाएगा जब उन्हें राजनीतिक क्षेत्र में भी निर्णय लेने का शक्ति प्राप्त होगी। महात्मा गांधी भी मानते थे कि समाज और राष्ट्र के विकास को तभी संपूर्ण और नियंत्रित माना जाएगा जब महिलाएं भी सक्रिय और संपूर्ण रूप से देश के राजनीतिक मामलों में भाग ले सकेंगी।

इस अंक का मुख्य उद्देश्य बिहार के ग्रामीण शासन में महिलाओं की भागीदारी पर ध्यान केन्द्रित करना है। शासन में उनकी सहभागिता का उनके सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन पर प्रभाव और गांव की राजनीति में उनके सामने आने वाली बाधाओं की पड़ताल करना है।

Nsrivastava

नीना श्रीवास्तव

अतिथि संपादक

ग्राम स्वराज बिना पूर्ण स्वराज नहीं

तुषार ए. गांधी

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के प्रपौत्र (Great grandson) श्री तुषार ए. गांधी एक सामाजिक कार्यकर्ता हैं तथा बाल तस्करी के विरुद्ध कार्य करते हैं। वे महात्मा गांधी फाउंडेशन के संस्थापक हैं और आई.आई.एम.एस.ए.एम. के गुडविल एंबेसेडर भी हैं। उन्होंने 'लेट्स किल गांधी' नामक किताब लिखी है।

जिस तरह पूरा ब्रह्मांड हमारी आत्मा में समाता है, वैसे ही पूरा भारत यहां के गांवों में बसता है।'' एम. के. गांधी **(बापू के आशीर्वाद : 12 जुलाई, 1945)।**

बापू मानते थे कि जिस तरह एक राष्ट्र अपने लोगों से जुड़कर और प्रत्येक को व्यक्तिगत रूप से स्वीकार कर बना होता है वो केवल अपने गांवों की सामूहिकता के कारण ही हो पाता है। संघ की उनकी अवधारणा स्वनिर्मित और आत्मनिर्भर ग्राम राज्यों से थी जिनमें से प्रत्येक अपनी प्रगति और उत्थान के लिए काम कर रहा होता है और इस प्रकार अंततः सामूहिक रूप से पूरे राष्ट्र की प्रगति के लिए कार्य करता है। अर्थात् ग्राम स्वराज से पूर्ण स्वराज तक। उन्होंने ग्राम स्वराज आंदोलन की शुरुआत वर्धा के सेवाग्राम से की थी और वहां के ग्राम सेवक. ों के लिए उनका जो संदेश था उसमें एक ऐसे आदर्श आत्मनिर्भर और स्वसंचालित ग्राम राज्य का निर्माण करना था जो शेष भारत के लिए नायाब उदाहरण बन सके।

''अगर भारत गांवों में रहता है तो उसे ऐसा आदर्श गांव बनने दो जो पूरे देश के लिए प्रतिमान का काम कर सके।'' **एम. के. गांधी (बापू के आशीर्वाद : 13, जुलाई, 1945)।**

वे मानते थे कि स्वराज का तात्पर्य केवल अंग्रेजों से आजादी तक ही सीमित नहीं था बल्कि हर व्यक्ति और हर गांव को स्वराज प्राप्त करना होगा। स्वराज भूख से, गरीबी, अशिक्षा, असमानता, अन्याय, अंधविश्वास और निर्भरता से। आज आजादी मिलने के करीब सात दशकों के बाद भी हम उन लक्ष्यों की प्राप्ति में खुद को विफल पाते हैं। इतने वर्षों में सरकारों की विफलता इसी बात से आंकी जा सकती है कि आज भी हम गांवों में स्वच्छता के लिए आवश्यक सुविधाओं का जुटान नहीं कर पाए हैं। स्वच्छता का अर्थ केवल शौचालय बना देना भर नहीं है बल्कि यह तो ग्रामीण स्वच्छता का सबसे अंतिम चरण है। ग्रामीण स्वच्छता से तात्पर्य स्थायी, प्रभावकारी, आसान रखरखाव से और बिना प्रदूषण फैलाए गंदगी का प्रबंधन करना है और जब ये सब चीजें हो जाएं तो घरों में शौचालय बनाए जाने का निहित अर्थ भी प्रकट हो जाएगा। परंतु अन्य बातों की तरह ही यहां भी हम शौचालय बनवाने पर प्राथमिकता से जोर दे रहे हैं, असरदार और स्थायी गंदगी प्रबंधन को अपनाए बिना।

ग्राम सेवकों को दिये अपने परामर्श में बापू हाइजीनिक स्वच्छता उपायों को अपनाने के लिए कहा करते थे, या फिर ऐसे सस्ते ग्रामीण शौच प्रणाली के बारे में बताते थे जो गांव की जनसंख्या के मुताबिक और स्थायी हो। उनके समाधान साधारण थे। वे ग्राम सेवकों से ऐसे अनुपजाउ और अनुर्वर भूमि की तलाश करने जो गांव से बाहर हो और वहां लैटरिन के लिए गड्ढे खोदने को कहते। गांव वालों को उनके मल को मिट्टी से ठीक तरीके से ढंकने का प्रशिक्षण दिया जाता। ये लैटरिन पोर्टेबल होते और जब उक्त स्थान के गड्ढे पूरे भर जाते तो किसी दूसरे स्थान पर ऐसे ही गड्ढे बना दिये जाते। जब उस पूरे क्षेत्र के स्थानों का इस्तेमाल कर लिया जाता तो सामुदायिक शौचालय के लिए फिर से किसी अन्य अनुपजाउ जमीन की तलाश की जाने लगती। इस बीच पहले इस्तेमाल में लाई जा चुकी जमीन को दो वर्षों तक बिना इस्तेमाल के छोड़ दिया जाता ताकि मानव और मवेशियों के मल पूरी तरह से सड़ जाएं और जमीन के उस अनुर्वर हिस्से को उर्वर बना दें और इस प्रकार कालांतर में उस अनुपयोगी जमीन को फिर से खेती के काम में लाया जा सके। इस तरह गांव में स्वच्छता की जरूरत भी पूरी की जा सकती थी और उसके साथ–साथ एक अनुपजाउ बेकार पड़ी जमीन को भी फिर से उपयोगी बनाया जा सकता था। आज गांवों में स्वच्छता अभियान इसलिए विफल हो रहे हैं क्योंकि वृहद स्तर पर बनाए जा रहे ये शौचालय टिकाउ नहीं होते और जल्दी ही बीमारी और प्रदूषण फैलाने वाले बन जाते हैं। गांव के बीचोंबीच गंदगी के खुले नाले पूरी तरह भरे होते हैं जो समूची आबादी को बीमार बनाते हैं। बापू अपने ग्राम सेवकों को, जब वे एक शिक्षक के रूप में गांवों में जाते थे तब भी हमेशा एक छात्र की तरह रहने और ग्रामीण जीवन तथा उसकी गुणवत्ता का सम्मान करने और उसे स्वीकार करने तथा उससे खुद सीखने की सीख देते थे।

'' अगर वे (ग्राम सेवक) गांवों में एक शिक्षक के रूप में जाएंगे तो वे किसी शिक्षार्थी

अतिथि संपादक

से कम नहीं होंगे। वे जल्दी ही यह समझ जाएंगे कि उन्हें गांव के साधारण लोगों से भी बहुत कुछ सीखना है।'' **एम. के. गांधी (हरिजन : 31 अगस्त, 1934)।**

हमारे ग्रामीण भले ही कम पढ़े–लिखे हैं लेकिन उन्होंने जीवन के विद्यालय में शिक्षा ली है और इस तरह अपनी परिस्थितियों तथा प्राकृतिक समझ–बूझ से अनेक ज्ञान और दक्षता हासिल की है। आज के समय में भी ग्रामीणों को शिक्षित बनाने के लिए प्रायः 'असभ्यों को सभ्य' बनाने वाली उपनिवेशीय सोच का सहारा ले लिया जाता है जो प्राकृतिक तथा परंपरागत ज्ञान एवं समझ को पूरी तरह नकार देती है और इस प्रकार ग्रामीणों का अपमान करती है, उनके साथ अमानवीयता करती है। यह प्रवृत्ति ग्रामीणों को सशक्त बनाने, उन्हें आत्मनिर्भर तथा स्वशासित बनाने में बाधक है। यह स्वतंत्र ग्रामीण राज्य के निर्माण की बजाय परजीवी जनसंख्या का निर्माण करती है। एक स्थायी और सफल ग्राम कल्याण कार्यक्रम वो है जो गांव के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करे, हरेक ग्रामीण के मन में सम्मान का भाव उत्पन्न करे, उन्हें अपने कर्तव्य और दायित्वों के प्रति सजग बनाए तथा कम अवधि में अधिक काम पूरा करने के लिए सटीक दिनचर्या का पालन करने को प्रेरित करे।

''ग्रामीण आंदोलन स्वस्थ संपर्क स्थापित करने का एक प्रयास है उनके साथ जो सेवा की भावना से ओत–प्रोत हैं और तदनुसार स्वयं को गांव की सेवा में तत्पर करने को प्रेरित हैं।'' **एम. के. गांधी (हरिजन : 20 फरवरी, 1937)।**

गांवों के विकास कार्यक्रमों का लक्ष्य ग्रामीणों की पारंपरिक क्षमताओं और उन क्षेत्रों में उनके अस्तित्व की पहचान कर अत्यधिक सक्षम समूह के साथ उनकी क्षमता तथा प्रतिभा को प्रभावकारी, उत्पादक तथा टिकाउ बनाने की दिशा में काम करना है। यदि ये तीनों काम कर लिये गये तो लाभ सुनिश्चित है। हमारे गांवों में प्रतिभा तथा दक्षता की कोई कमी नहीं है, कमी है तो केवल स्थायित्व और प्रभाविता की। कई बार गांवों में की जाने वाली पहल इसीलिए काम नहीं कर पातीं क्योंकि सारे प्रयास ग्रामीणों से उन कामों को कराने के लिए किये जाते हैं जिनकी उन्हें जानकारी नहीं होती जबकि सफल प्रयास वे रहे हैं जिन्होंने आगे बढ़कर ग्रामीणों की काबिलियत की पहचान की। साथ ही उन कारकों की भी खोज की जिनकी वजह से ग्रामीण अपने हुनर को आगे ले जाने में सफल नहीं हो सके और तब उन सारी अड़चनों को दूर करने में सहायता की ताकि स्थायी कामयाबी का मार्ग प्रशस्त हो सके। ऐसे प्रयासों में गांव वालों ने भी सम्मान और गर्व का अनुभव किया। इससे एक–दूसरे पर निर्भर ऐसे समुदायों का भी निर्माण हुआ जो परस्पर उन्नति में सहायक बने।

''मेरे विचार में ग्राम स्वराज वो है जो संपूर्ण स्वतंत्र हो, अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं के लिए अपने पड़ोसियों पर आश्रित हो तथा जरूरत पड़ने पर अन्य आवश्यकताओं के लिए भी एक–दूसरे पर निर्भर हों।'' **एम. के. गांधी (हरिजन : 26 जुलाई, 1942)।**

जहां एक ओर बापू ने स्वतंत्र ग्राम राज्य पर जोर दिया वहीं दूसरी ओर वे यह भी जानते थे कि कोई भी गांव अपने आप में सौ फीसदी पूर्ण नहीं हो सकता इसलिए बिना समर्थन तथा सहयोग के आदर्श स्थिति बनाए रखना कठिन हो सकती है। इसलिए उन्होंने एक ऐसे तंत्र की वकालत की जिसके तहत किसी एक गांव की अत्यधिक उपज का कारोबार दूसरे गांव की अत्यधिक उपज के साथ किया जा सके और इस प्रकार पूरे देश में ग्राम राज्यों की एक लाभ आधारित पारस्परिक श्रृंखला का निर्माण किया जा सके। तब जाकर कहीं पूर्ण स्वराज का दावा किया जा सकेगा। और इस पूरी प्रक्रिया में एक ऐसी आबादी का निर्माण होगा जो सशक्त और जिम्मेदार नागरिक भी होगी।

'' स्वराज की स्थापना ही गांवों की सेवा है।'' **एम. के. गांधी (यंग इंडिया : 26 दिसम्बर, 1929)।**

तब जबकि आजादी एक दूर का ख्वाब था, बापू ने अपने लोगों के लिए एक चेतावनी जारी कर दी थी ''अगर गांव खत्म होते हैं तो भारत भी खत्म हो जाएगा। भारत नहीं बचेगा। दुनिया में उसका अपना ही लक्ष्य खो जाएगा।'' **एम. के. गांधी (हरिजन : 20 अगस्त, 1936)।** बापू मानते थे कि भारत का वजूद तभी है जब उसके गांवों और अंततः ग्रामीणों को सशक्त बनाया जा सकेगा तथा उन्हें गरीबी, भूख, अशिक्षा, अन्याय और असमानता से आजादी दिलाई जा सकेगी। आज हम देखते हैं कि आधुनिक भारतीय गणराज्य असमानता, अन्याय और भेदभाव का नमूना बन कर रह गया है। ये बापू के सपनों के भारत के विनाश के बीज हैं, वो भारत जहां लोग समूह में और व्यक्तिगत रूप से स्वराज में जी सकें। उस सपने को पूरा करने के लिए हमें सामूहिक और व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदारी उठानी होगी।

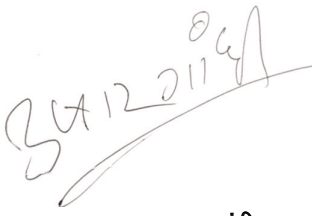

तुषार गांधी

अनुक्रमणिका

संकल्पना

हमारी बात : संपादकीय

ग्राम स्वराज बिना पूर्ण स्वराज नही – तुषार ए. गांधी 1.

ग्राम पंचायत : भारतीय सभ्यता का अंग 4.

बलवंत राय मेहता कमिटी 7.

आरंभ नये युग का 8.

सत्ता का विकेन्द्रीकरण और पंचायतें – सुधा पिल्लई 10.

शहरी स्थानीय निकायों के लिए जेंडर बजटिंग – प्रो. विभूति पटेल 12.

भूमि अधिकार और पंचायत की भूमिका – शिल्पा वसावड़ा व मीना राजगोड़ 15.

औरतों को मिले राजनीतिक बदलाव का मौका – देवकी जैन 18.

आदिवासी स्वशासन और पेसा – कीर्ति 19.

बेगम के बादशाह –सारिका मल्होत्रा 22.

बदलाव की पहलकदमियां – शाहिना परवीन 24.

दो बच्चों की नीति : सामाजिक प्रभाव – एस. अनुकृति व अभिषेक चक्रवर्ती 27.

पंचायत रहे कि जाए – ओम प्रकाश 29.

धीमी है परिवर्तन की गति – शरद कुमारी 31.

नई सोच, नए इरादे 32.

महिला पंचायतें 34.

आदर्श गांव 35.

श्रोत

www.shodhganga.inflibnet.ac.in
www.yourarticlelibrary.com
www.jaagore.com
www.cdhr.org.in
www.thehindu.com
www.google.com
www.hindustantimes.com
www.timesofindia.com

Images from

bihar.gov.inslider_imagei
www.thebetterindia.com
agropedia.iitk.ac.in
www.wordpress.com
www.ipatrika.com
www.whatinindia.com

ग्राम पंचायत : भारतीय सभ्यता का अंग

बापू ने कहा था

''बहुत साल पहले, जब शायद इतिहास लिखा भी नहीं गया था, भारतीय मनीषियों ने गांवों और स्थानीय पंचायतों पर काम करना शुरू कर दिया था। इस बीच हमारा देश उथल–पुथल और उतार–चढ़ावों से गुजरता रहा, राजाओं और राजशाहियों में युद्ध हुए, साम्राज्य बने, शासन किया, अत्याचार किये और लुप्त हो गए लेकिन गांवों का जीवन अपनी गति और अपने ही मिजाज से चलता रहा। युद्ध के कोलाहल और साम्राज्यों के उत्थान–पतन के शोर से विलग। हमारे पास ग्रामीण राज्य हैं जिन्होंने हमारी जीवन संपत्ति को संरक्षित कर सभ्य समाज को संभव बनाया है।''

'पंचायत' शब्द 'पंच पंचाश्वनुस्थितः' से बना है जिसका तात्पर्य ग्राम संघ या ग्रामीण समुदाय से लगाया जा सकता है। देश में पंचायती राज व्यवस्था उतनी ही पुरानी है जितनी की खुद भारतीय सभ्यता। प्राचीन भारत के गांवों में भी नागरिक और कानूनी सद्भाव को बनाए रखने के लिए समुदायों का चलन था जिनकी विवादों को सुलझाने में महती भूमिका होती थी। ऋग्वेद, मनुसंहिता, धर्मशास्त्रों, उपनिषदों और जातकों सहित कई प्राचीन ग्रंथों में स्थानीय प्रशासन की चर्चा की गई है जो ग्रम पंचायत के तत्कालीन स्वरूप की ओर संकेत करते हैं। महाभारत के शांतिपर्व और मनुस्मृति में कई स्थानों पर ग्राम सभा की मौजूदगी का उल्लेख किया गया है।

ऋग्वेद

भारत के अतिप्राचीन ग्रंथों में स्वयंशासित ग्राम समुदायों की चर्चा की गई है। 200 ईसा पूर्व रचित ऋग्वेद में 'सभा' और 'समिति' का उल्लेख किया गया है। वैदिक काल में गांव ही प्रशासनिक कार्यों के केन्द्र हुआ करते थे। समिति एक ऐसे वैदिक लोक समूह को कहा जाता था जो कुछ हद तक राजा के चयन और नियुक्ति में भी भूमिका निभाता था जबकि सभा का कार्य वैधानिक फैसले लेना था। समिति और सभा दोनों को ही वाद–विवाद करने और अन्य तत्कालीन समूहों से अधिक विशेषाधिकार प्राप्त होते थे। गांव के मुखिया का कार्यालय जिसे 'ग्रामीणी' कहते थे, गांवों के एक प्रशासनिक ईकाई होने की पुष्टि करते थे। पुरा वैदिक काल में समिति का विलोप हो गया और वो लोकप्रिय समूह के रूप में सामने आया जबकि सभा राजा के आस–पास रहने वाले लोगों के विशिष्ट परिषद के तौर पर जाना जाने लगा। समय बीतने के साथ ही ग्रामीण ईकाइयों ने पंचायत का स्वरूप लेना शुरू कर दिया जिस पर पूरे गांव का दायित्व होता था। गांव में कानून व्यवस्था की जिम्मेदारी लेने और परंपराओं के निर्वाह की शक्ति प्राप्त होने के कारण पंचायत का विशेष स्थान होता था। इसके अलावा हर गांव में एक जाति पंचायत भी होने लगी जो अलग–अलग जाति के आधार पर गठित होती थी और उनके फैसले लेती थी। विशेषकर गंगा के मैदानों में इसका चलन ज्यादा था। दक्षिण भारत में जो ग्राम समुदाय होते थे उनमें कई समूहों और जातियों का प्रतिनिधित्व रहता था। एक चीज जो दक्षिण और उत्तर दोनों

जगह समान थी वो ये कि ग्राम पंचायत दोनों ही जगहों पर प्रशास. निक और सामाजिक सत्ता बल्कि सामाजिक एकता के केन्द्र थे।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी 'ग्राम परिषद' का वर्णन किया गया है जो करीब 400 ईसा पूर्व में लिखा गया था। अर्थशास्त्र में ग्रामीण प्रशास. निक व्यवस्था के बारे में विस्तार से बताया गया है जो कई विभागों में बंटा हुआ था। ग्राम परिषद का मुखिया अध्यक्ष कहलाता था जो सभी कार्यों पर नियंत्रण और उनकी निगरानी करता था। उसके अतिरिक्त कई और अधिकारी होते थे जिनमें सामख्यका यानी अकांउंटेंट, अनिकित्सका अर्थात पशु चिकित्सक, जम्घ कार्मिक यानी ग्रामीण वाहक और चिकित्सक अर्थात डॉक्टर प्रमुख हैं। गांव का अध्यक्ष ग्रामीणों से बकाये की वसूली के लिए जिम्मेदार होता था और वही असामाजिक गतिविधियों पर काबू रखने के लिए भी उत्तरदायी होता था। इसी तरह वाल्मीकी रामायण में भी गणपदों का उल्लेख किया गया है जो संभवतः गांवों के समूह को कहते थे।

मौर्य साम्राज्य

मौर्य साम्राज्य के दौरान भी गांव ही प्रशासन के मुख्य आधार हुआ करते थे। सार्वजनिक उपयोगिता और मनोरंजन के साथ–साथ विवादों के समाधान तथा संपत्ति के मतभेदों को समाप्त करने में ग्रामीणों द्वारा बनाए गए समूह अहम भूमिका निभाते थे। हालांकि उस समय तक ग्राम परिषद का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाया और वह गुप्त काल में अधिक ठोस रूप में सामने आया। इस समय ग्रामीण निकायों को मध्य भारत में 'पंचमंडल' और बिहार में 'ग्रामजनपद' के नाम से जाना जाने लगा था। ये निकाय मुआवजे और क्षतिपूर्ति जैसे मसलों पर प्रशासन और सरकार से समझौता करने की स्थिति में होते थे। बाद की राजशाहियों में जैसे चोल साम्राज्य में ग्रामीण सदनों के निर्माण और उनकी कार्यसमितियों का विस्तार से वर्णन मिलता है। गांव का प्रशासन चुने हुए प्रतिनिधियों से गठित ग्राम परिषद द्वारा संचालित होता था।

मुगल साम्राज्य

मुगल काल में और खासकर शेरशाह के साम्राज्य के दौरान गांवों का संचालन उनके स्वयं के प्रशासन के माध्यम से होता था। हर गांव में ऐसे वृद्धजन होते थे जो पूरे गांव की गतिविधियों पर नजर रखते और जरूरत पड़ने पर दोषियों को सजा भी सुनाते। गांव का मुखिया जिसे आंशिक रूप से सरकारी अधिकारी कहा जा सकता था, ग्राम पंचायत और उच्च अधिकारियों के बीच सेतु के तौर का काम करता था। अकबर ने इस व्यवस्था को अपनाया था और इसे अपने नागरिक प्रशासन का मुख्य अंग स्वीकार किया था। उस दौर में हर गांव में एक पंचायत होती ही थी जिसे कर वसूलने, नियंत्रण रखने, विवादों को सुलझाने और फैसले सुनाने का अधिकार प्राप्त होता था। मुगल काल में कर वसूलने के लिए एक व्यापक तंत्र का निर्माण किया गया था जिसका एक अंग ग्राम पंचायतें भी थीं और यह व्यवस्था भारत में तब तक लागू रही जब तक कि ब्रिटिशों ने अपनी पकड़ मजबूत नहीं कर ली।

ब्रिटिश काल

अंग्रेजों का भारत में आगमन विशुद्ध व्यापारिक उद्देश्य से हुआ था। उनका पूरा ध्यान इस देश के जरिये अपने कारोबार को बढ़ाना और अपने देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाना था जबकि भारतीय प्रशासन अथवा विकास का उनकी सूची में स्थान नहीं था। ऐसे में स्थानीय प्रशासन को अहमियत देना तो दूर की बात थी। अंग्रेजों के भारत आने से पहले जहां ग्रामीण प्रणालियां समृद्ध और विकसित थीं वहीं अंग्रेजों की उपेक्षापूर्ण नीति के कारण धीरे–धीरे ये अपना स्वरूप और स्वतंत्रता खोने लगीं। हालांकि बाद के वर्षों में अंग्रेजों ने ही स्थानीय प्रशासन को चुने हुए प्रतिनिधियों की संस्था बनाने में भूमिका निभाई। शुरुआत के दिनों में स्थानीय निकायों से उनका हित केवल अपने व्यापारिक लक्ष्यों को पूरा करने तक ही जुड़ा था और इसी के तहत उन्होंने 1687 में मद्रास में एक मनोनीत सदस्यों का एक म्यूनिसिपल कार्पोरेशन भी बनाया था। इंग्लैंड के टाउन काउंसिल की तर्ज पर बनाए गए इस कार्पोरेशन को इमारतों, मीटिंग हॉलों और

स्कूलों आदि से कर वसूलने का अधिकार दिया गया था। यहां की सफलता से उत्साहित होकर अंग्रेजों ने दूसरे शहरों में भी इस मॉडल को लागू किया जिसने उनकी कर वसूली की ताकत को और बढ़ा दिया। अब तक के सभी निकायों में सदस्यों की नियुक्ति मनोनयन के आधार पर होती थी और वहां सदस्यों के निर्वाचन की कोई व्यवस्था नहीं थी। इसी दौरान 1869 से 72 तक भारत के वायसराय रहे लॉर्ड मेयो ने प्रशासनिक गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए पूरी प्रक्रिया को विकेन्द्रीकृत करने पर जोर दिया और तदुपरांत 1870 में शहरी स्थानीय निकायों में प्रतिनिधियों के निर्वाचन की अवधारणा को सामने रखा।

बंगाल चौकीदार एक्ट, 1870 और लॉर्ड रिपन

1870 में बंगाल में चौकीदार एक्ट को लागू कर परंपरागत ग्राम पंचायत प्रणाली को पुनर्जीवित करने की दिशा में एक कदम बढ़ाया गया। इस एक्ट के तहत जिलाधिकारियों को यह अधिकार दिया गया कि वे मनोनीत ग्रामीणों की एक पंचायत गठित करें जिनका काम कर वसूल कर चौकीदारों के वेतन की व्यवस्था करना होगा।

1882 में लॉर्ड रिपन ने अधिकारियों द्वारा मनोनीत पंचायत की अवधारणा का त्याग कर दिया और एक नई स्थानीय स्वयं संचालित सरकार का विचार दिया जिसमें स्थानीय बोर्ड को छोटी–छोटी इकाइयों में बांट कर उनकी क्षमता बढ़ाने पर जोर दिया गया। आम लोगों की इसमें अत्यधिक सहभागिता सुनिश्चित करने के लिए उन्होंने एक निर्वाचन प्रणाली की अवधारणा सामने रखी। 18 मई, 1882 को सरकार ने इस पर प्रस्ताव पारित कर दिया और इस प्रकार स्थानीय निकायों के निर्वाचन को एक ठोस स्वरूप प्रदान करने के दृष्टिकोण से यह तिथि ऐतिहासिक बन गई। ब्रिटिश शासन में पहली बार चुने हुए गैर सरकारी–आधिकारिक सदस्यों की बहुलता वाले एक बोर्ड का अस्तित्व सामने आया जिसके अध्यक्ष पद पद भी एक गैर सरकारी–आधिकारिक व्यक्ति विराजमान था। इसने निर्वाचित प्रतिनिधियों वाली ग्रामीण इकाइयों के गठन का भी रास्ता साफ कर दिया था। इतिहास में लॉर्ड रिपन को भारत के शहरी स्थानीय निकायों का जन्मदाता कहा जाता है। उसके प्रयासों के बाद शहरी और ग्रामीण निकायों के गठन और विकास के लिए समितियों और कानूनों की एक श्रंखला ही शुरू हो गई। 1907 में विकेन्द्रीकरण कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में कहा '' गांवों को स्थानीय स्वयं प्रशासन की प्राथमिक इकाई के रूप में मान्यता न देकर सरकार ने गलत शुरुआत की है। ग्रामीण स्वयं प्रशासन को लागू करने में अब तक जो मामूली कामयाबी मिली है वो इस वजह से ही कि हमने आधार के महत्व को नहीं पहचाना और इसलिए ये सबसे जरूरी है कि गांव पंचायतों का गठन और विकास कर ग्रामीणों की मदद से उनका ही प्रशासन चलाया जाय।'' कमीशन की सिफारिशों को हालांकि उस समय अंग्रजी हुकूमत ने नहीं माना और फिर प्रथम विश्व युद्ध ने पंचायतों के विकास पर एक और वार कर दिया।

मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार, 1919

1919 के मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार के बाद स्थानीय स्वशासन का दायित्व मंत्रियों को हस्तांतरित कर दिया गया। मंत्रियों ने पंचायती राज की पुनर्स्थापना के उद्देश्य से कुछ कानून भी बनाए लेकिन लागू करने के समय पैसों की कमी आड़े आ गई। इस बीच महात्मा गांधी भी गांवों में स्वशासन लागू करने के पक्ष में जागरूकता मुहिम चला रहे थे। उन्होंने समझाया कि गांवों के विकास और उत्थान में ही पूरे समाज की प्रगति निहित है इसलिए जरूरी है कि हर गांव में एक शक्तिसंपन्न पंचायत मौजूद हो। इन सब प्रयासों का नतीजा ये हुआ कि 1925 में आठ प्रांतों ने ग्राम पंचायत कानून पारित कर दिया। लेकिन इन पंचायतों के अधीन बेहद कम गांव रखे गए थे और इनकी शक्ति को भी सीमित कर दिया गया था। नतीजा ये हुआ कि इन सुधारों का पूरे देश पर कोई दूरगामी असर नहीं हो सका।

ग्राम पंचायतों के गठन और विकास की दृष्टि से 1937 एक महत्वपूर्ण वर्ष साबित हुआ। प्रांतों में चुनकर आई कांग्रेस सरकारों ने ग्राम पंचायतों के पुर्नजीवन और पुर्नगठन की आवाज उठाई लेकिन इससे पहले कि वे कुछ ठोस कर पाते ब्रिटिश सरकार ने दूसरे विश्व युद्ध में भारत को भी एक पक्ष बनाने की घोषणा कर दी और वह भी भारतीयों की सलाह लिए बिना। इससे नाराज होकर कांग्रेस मंत्रियों ने इस्तीफा दे दिया और एक बार फिर पंचायतों का मामला अधर में लटक गया। विश्व युद्ध के बाद फिर से चुनाव कराए गए और कांग्रेस के मंत्री वापस लौटे। उन्होंने पंचायतों को लेकर रुकी हुई योजनाओं को फिर शुरू किया और इस तरह 1947 में जब भारत आजाद हुआ तो उस समय तक देश के एक–तिहाई गांवों में पारंपरिक पंचायतें गठित की जा चुकी थीं और वे अपना काम कर रही थीं।

1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान गांवों में न केवल जबर्दस्त विरोध देखा गया बल्कि राजनीतिक सक्रियता के साथ–साथ संरचनात्मक प्रयास भी किये जाने लगे। जैसे कि महाराष्ट्र, उड़ीसा और बंगाल में गांवों में 'प्रति सरकारें' बनने लगीं। ये सरकारें ग्रामीणों के कानूनी मसलों को तो सुलझाती ही थीं साथ ही गांव में अस्पतालों और स्कूलों के निर्माण के अलावा किसानों को स्थानीय दलालों से बचाने का काम भी बखूबी करने लगी थीं।

बलवंतराय मेहता कमिटी

1947 में आजादी मिलने के बाद गठित भारतीय सरकार पर गांवों में पंचायतों के गठन का दवाब था। गांधी जी ने भी ग्राम स्वराज का नारा देते हुए ग्रामीण जनता के हाथों में शक्ति के हस्तांतरण की आवाज बुलंद की। लेकिन आश्चर्यजनक रूप से 1948 में संविधान का जो ड्राफ्ट तैयार किया गया उसमें पंचायती राज का कहीं उल्लेख नहीं किया गया। गांधी जी बिफर पड़े और उनके विरोध और कोशिशों के बाद आखिरकार पंचायतों को संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में स्थान मिल सका। राज्यों के नीति निर्देशक तत्वों के अनुच्छेद 40 में कहा गया कि राज्यों को ग्राम पंचायतों के गठन की दिशा में कदम उठाने होंगे और उन्हें वे तमाम शक्तियां एवं सत्ता प्रदान करनी होगी जो उन्हें स्वशासन स्थापित करने में सक्षम बनाने के लिए जरूरी हो। हालांकि संविधान निर्माताओं ने गांव–गांव तक लोकतंत्र को मजबूत बनाने की अपनी कोशिश में एक बड़ी भूल यह कर दी कि नीति निर्देशक तत्व राज्यों पर बाध्य नहीं बनाए गए और इस प्रकार कई राज्यों को इसे लागू न करने का मौका मिल गया।

1952 में इस दिशा में फिर एक बार पहल शुरू की गई और सामुदायिक विकास कार्यक्रम एवं 1953 की राष्ट्रीय विस्तार सेवा में पंचायतों के विकास की योजनाओं को शामिल किया गया। मकसद था गांवों को अपने सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के लिए खुद तैयार करना और तदुपरांत ग्रामीणों के जीवन शैली में बदलाव आना। इसे 55 चुने हुए ब्लॉकों में लागू किया गया और इसके तहत ब्लॉक डेवलपमेंट ऑफिसर यानी बीडीओ तथा विलेज लेवल वर्कर यानी वीएलडब्ल्यू की नियुक्ति का प्रावधान भी किया गया। यद्यपि कि इस कार्यक्रम को अच्छी मंशा के साथ शुरू किया गया था फिर भी लोगों की पर्याप्त सहभागिता न होने तथा तंत्र के अभाव में यह कार्यक्रम सफल नहीं हो सका।

गांवों में पंचायतों के गठन में मिल रही विफलताओं को देखते हुए 1957 में बलवंत राय मेहता कमिटी का गठन किया गया। आजाद भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण स्थापित करने की दिशा में बनाई गई यह पहली कमिटी थी और इसकी सिफारिशों ने गांवों के पुनर्निमाण के कई ठोस उपाय सामने रखे जो बाद के वर्षों में मील का पत्थर साबित हुए। कमिटी ने साफ तौर पर कहा कि अब तक के सारे कार्यक्रम इसलिए विफल रहे क्योंकि उनसे आम ग्रामीणों को नहीं जोड़ा जा सका था। जब तक स्थानीय स्तर पर पहल नहीं की जाती तब तक ग्राम स्वराज का सपना अधूरा ही रहेगा। मेहता कमिटी ने अपनी रिपोर्ट में पांच आधारभूत आवश्यकताओं के बारे में बताया :

1. स्थानीय स्वशासित सरकारों के गठन में जिला से लेकर गांव के स्तर पर त्रिस्तरीय व्यवस्था अपनाई जानी चाहिए और सभी को आपस में संबद्ध होना चाहिए।
2. अपने कार्यों को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए इन निकायों को वास्तविक सत्ता और दायित्वों से परिपूर्ण किया जाना चाहिए।
3. इन निकायों को समस्त आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराए जाने चाहिए ताकि वे निर्बाध तरीके से काम कर सकें।
4. तीनों स्तर पर कल्याण एवं विकास की सभी योजनाओं को इन निकायों के माध्यम से पूरा किया जाना चाहिए।
5. सत्ता के हस्तांतरण तथा विकेन्द्रीकरण के लिए इस त्रिस्तरीय व्यवस्था को सदैव तत्पर रहना चाहिए। कमिटी ने जिस त्रिस्तरीय व्यवस्था के बारे में बताया उसे जिला परिषद, पंचायत समिति और ग्राम पंचायत के नाम से जाना गया। कमिटी की रिपोर्ट में पहली बार ग्राम पंचायत में दो महिलाओं को शामिल करने की बात कही गई जो अपनी इच्छा से जुड़ें और महिलाओं व बच्चों के हित में काम करें।

राजस्थान ने की पहल

बलवंत राय मेहता की सिफारिशों को एक अप्रैल, 1958 में लागू किया गया और 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान इसे लागू करने वाला पहला राज्य बना। 1960 के मध्य तक देश के लगभग सभी हिस्सों में पंचायतों का गठन कर लिया गया था और 5,79,000 गांवों और 92 फीसद ग्रामीण जनसंख्या को इसके तहत ले आया गया था। 2,17,300 से ज्यादा पंचायतों का गठन किया जा चुका था। पूरे देश में इस व्यवस्था को लेकर उत्साह और उत्सुकता का माहौल था और आम लोग इसमें बढ़–चढ़कर हिस्सा ले रहे थे। सामुदायिक विकास मंत्रालय की 1964–65 की एक रिपोर्ट में कहा गया था कि पंचायती राज व्यवस्था के जरिये नौजवान नेतृत्व सामने आ रहा था। लोगों में अपने गांव के लिए काम करने में पूर्ण संतुष्टि का भाव देखा जा रहा था।

महिलाओं को पंचायत में आरक्षण

आरंभ नये युग का

फोटो : दि हंगर प्रोजेक्ट

सत्ता के वास्तविक विकेन्द्रीकरण की शुरुआत तब हुई जब दिसम्बर, 1992 में भारतीय संसद ने पंचायती राज व्यवस्था में परिवर्तन के लिए संविधान में एक नया संशोधन पास किया। जहां अनुच्छेद 40 में कहा गया था कि राज्यों को ग्राम पंचायतों के गठन की दिशा में कदम उठाने होंगे और उन्हें वे तमाम शक्तियां एवं सत्ता प्रदान करनी होगी जो उन्हें स्वशासन स्थापित करने में सक्षम बनाने के लिए जरूरी हो, वहीं 1992 के 73वें संविधान संशोधन में स्पष्ट रूप से गांवों में पंचायती राज की स्थापना के बारे में कहा गया। वो राज जिसमें हर वर्ग और लिंग के लोगों को समान प्रतिनिधित्व और अधिकार प्राप्त हो। 1993 में लागू संशोधन में जिन दो बातों को केन्द्र में रखा गया वे थे

– पहला, पंचायतों में नियमित चुनाव हों, उनके पास पावर हो और उन्हें संसाधन प्रदान किया जाय, और

–दूसरा, समाज एवं राजनीति में हाशिये पर रखे गए वर्गों, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा महिलाओं को प्रतिनिधित्व देना। इसमें गांव, जिला और माध्यमिक स्तर पर पूरे देश में चुनी गई पंचायतों की स्थापना करने का स्पष्ट निर्देश दिया गया। कहा जा सकता है कि संविधान के 73वें संशोधन ने पंचायतों में महिलाओं के लिए जो जगह बनाई वो आज भी उनके लिए मील का पत्थर बना हुआ है। इसने सभी पंचायत परिषदों और प्रधान की सीटों का एक–तिहाई महिलाओं के लिए सुरक्षित कर दिया। इसने 1992 में ही 74वें संशोधन का भी मार्ग प्रशस्त कर दिया जिसके बाद नगर निगम और नगर पालिकाओं में भी महिलाओं के लिए सीट सुरक्षित रखने के प्रावधान लागू कर दिये गये।

बिहार ने दिया 50 फीसद आरक्षण

इस रास्ते पर चलते हुए बिहार पहला राज्य बना जिसने अपने यहां की त्रिस्तरीय पंचायती व्यवस्था में महिलाओं के लिए 50 फीसद आरक्षण का एलान कर दिया। उसके बाद मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, और हिमाचल प्रदेश भी उसका अनुसरण किया। वर्तमान में बिहार में चुने हुए जनप्रतिनिधियों में से 54 फीसद महिलाएं हैं। हालात ये हैं कि आज भारत में पूरी दुनिया की महिला जनप्रतिनिधियों से भी ज्यादा चुनी हुईं महिला जनप्रतिनिधि मौजूद हैं। अगर बिहार की बात करें तो यहां 38 जिला परिषद, 531 पंचायत समिति और 8471 ग्राम पंचायत हैं। बिहार में पंचायती राज में महिलाओं की भागीदारी पर रेणु कुमारी और सियाराम सिंह ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि इतनी बड़ी संख्या में महिलाओं के नेतृत्व ने बिहार के गांवों को हर ओर से प्रभावित किया है। उन्होंने इस बात का भी विरोध किया है कि चुनी हुई महिला प्रतिनिधि (ईडब्ल्यूआर) केवल डमी हैं और वे पंचायत की बैठकों में हिस्सा नहीं लेतीं या फिर अपनी बात नहीं रखतीं। उन्होंने समस्तीपुर के पूसा ब्लॉक की 50 चुनी हुई महिला प्रतिनिधियों पर अध्ययन में पाया कि न केवल वे बैठकों में हिस्सा लेती हैं बल्कि अपनी बात भी रखती हैं।

महिलाओं ने माना कि चुनाव जीतने के बाद समाज और परिवार में उनकी अहमियत बढ़ गई है। उनके भीतर आत्मविश्वास बढ़ा है और अब उनमें खुद के लिए सम्मान है। घर के मामलों में निर्णय लेने की क्षमता और अवसर भी बढ़े हैं। ऐसी कई महिला मुखिया और प्रतिनिधियों के नाम सामने रखे जाते हैं जिन्होंने तमाम बाधाओं के बाद भी चुनाव जीता और आज अपने गांव और समाज के लोगों के लिए नजीर बनी हैं।

आरक्षण ने बदली किस्मत

पंचायती राज मंत्रालय के 2006–07 की मध्यावधि मूल्यांकन रिपोर्ट के मुताबिक, हमारे देश में करीब 10 लाख महिला जनप्रतिनिधि हैं और करीब 80 हजार महिला प्रधान हैं। 1999 में सेंटर फॉर वीमेन डेवलपमेंट स्टडीज के एक अध्ययन में बताया गया कि सर्वे में शामिल 95 फीसद महिला प्रतिनिधियों ने माना कि अगर आरक्षण नहीं होता तो वे चुनाव नहीं जीत पातीं। वर्ष 2008 में पंचायती राज मंत्रालय के लिए एसी निल्सन ओआरजी–मार्ग द्वारा चुनी हुई महिला जनप्रतिनिधियों पर किये गये एक राष्ट्रवादी सर्वेक्षण से आरक्षण को लेकर कुछ अहम बातों का खुलासा हुआ। 1,039,058 चुनी हुई महिला जनप्रतिनिधियों में हर पांच में से चार आरक्षित सीट से थीं। आरक्षण के कारण ही करीब 83 फीसद महिलाओं का पहली बार राजनीति में प्रवेश संभव हो सका था। हालांकि आरक्षण का लाभ वंचित समूहों के लिए उठा पाना मुश्किल रहा क्योंकि कुल चुनी हुई महिला जनप्रतिनिधियों में से केवल 26 फीसद अनुसूचित जाति तथा 13 फीसद अनुसूचित जनजाति की थीं।

आरक्षण ने महिलाओं को न केवल राजनीति में इंट्री दी बल्कि ऐसी कई चीजें दीं जिनकी अब से पहले उनके पास कमी थी। सर्वे में शामिल महिलाओं ने माना कि चुनाव जीतने के बाद समाज और परिवार में उनकी अहमियत बढ़ गई है। उनके भीतर आत्मविश्वास बढ़ा है और अब उनमें खुद के लिए सम्मान है। घर के मामलों में निर्णय लेने की क्षमता और अवसर भी बढ़े हैं। ऐसी कई महिला मुखिया और प्रतिनिधियों के नाम सामने रखे जाते हैं जिन्होंने तमाम बाधाओं के बाद भी चुनाव जीता और आज अपने गांव और समाज के लोगों के लिए नजीर बनी हैं।

पिछड़ी जाति की महिलाओं को चुकानी पड़ी कीमत

महिलाओं के लिए आरक्षण राजनीति में आने की सीढ़ी तो बनी लेकिन उंचाइयों तक पहुंचने में उन्हें इज्जत, सम्मान और यहां तक कि जान भी गंवानी पड़ी। खासकर दलित और अनुसूचित जाति की महिला प्रतिनिधियों के लिए रास्ता बहुत दूभर रहा। हमें याद है राजस्थान का वह मामला जब 15 अगस्त को राष्ट्रीय झंडा फहराने के दौरान एक आदिवासी महिला सरपंच को निर्वस्त्र कर दिया गया था। ऐसा ही एक वाकया मध्य प्रदेश में हुआ जब ग्राम सभा की बैठक में एक दलित महिला प्रधान का चीरहरण किया गया था। उसकी गलती यही थी कि उसने फैसला लेने से पहले बड़ी जाति के लोगों से सलाह नहीं ली थी। इसके अलावा भी ऐसे कई मौके देखने को मिले हैं जहां ग्राम सभा की बैठक में दलित महिला प्रधान को जमीन पर बैठना पड़ा है जबकि रसूखदार मर्दों को कुर्सियां दी गई थीं। ये घटनाएं उस कुत्सित मानसिकता का परिणाम हैं जो हमारे पुरुषों को किसी महिला को नेतृत्व के स्थान पर स्वीकार नहीं करने देती है। हालात तब और खराब हो जाते हैं जब नेतृत्व करने वाली महिला दलित या पिछड़ी जाति से हो। इतना ही नहीं कई बार सरकारी और प्रशासनिक अधिकारी भी महिला प्रतिनिधियों को समुचित सम्मान नहीं दे पाते और उनकी अवहेलना करते हैं। ऐसा एक मामला नवादा के पंचानपुर गांव में देखा गया जहां की मुसहर समुदाय की समिति सदस्य ने आरोप लगाया कि लोन के लिए आवेदन देने पर बैंक अधिकारियों ने उन्हें अपमानित किया।

मुखिया पति : एक जटिल स्थिति

महिलाओं को स्थानीय चुनावों में आरक्षण मिलना और फिर उनका भारी संख्या में चुनकर सामने आना एक सुखद अनुभव और विकास की ओर बेहतरीन कदम है लेकिन इसके साथ ही साथ एक ऐसी जटिलता भी आगे बढ़ रही है जो महिला प्रतिनिधियों की विश्वसनीयता और उनके फैसलों को बुरी तरह प्रभावित कर रही हैं। गांवों में 'मुखिया पति' शब्द आम है। ये वो 'एमपी' पति हैं जिनकी पत्नियां गांव की चुनी हुई मुखिया हैं। आरोप लगते रहे हैं और उनमें बहुत हद तक सच्चाई भी है कि मुखिया पतियों का अपनी पत्नियों के काम–काज में अत्यधिक दखल होता है। हालांकि एसी निल्सन ओआरजी–मार्ग के अध्ययन से अब थोड़ी राहत मिलने लगी है क्योंकि यह बताता है कि समय के साथ–साथ मुखिया पतियों का हस्तक्षेप कम होने लगा है क्योंकि महिला प्रतिनिधि ज्यादा सजग और आत्मविश्वासी होने लगी हैं। महिला जनप्रतिनिधियों को ज्यादा से ज्यादा प्रशिक्षण देकर उन्हें और भी ज्यादा आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है और खुशी की बात ये है कि सरकार के साथ–साथ बड़ी संख्या में एनजीओ भी इस ओर आगे बढ़ रहे हैं।

अंत में कह सकते हैं कि पंचायत में महिलाओं को अपनी पहचान बनाने में कामयाबी मिल रही है लेकिन इसकी गति बढ़ाने तथा उनकी उपस्थिति को और उपयोगी बनाने के लिए जरूरी है कि कट्टरवादी सोच और मानसिकता को त्याग कर आगे बढ़ें।

विशेषज्ञ

सत्ता का विकेन्द्रीकरण और पंचायतें

अच्छी सोच, विस्तृत दिशा–निर्देशों, परामर्श, यहां तक कि प्रधानमंत्री के संदेश के बाद भी पंचायतों को सत्ता का हस्तांतरण धीमी गति से और फीका है। 23 अप्रैल, 1993 को 73वें संविधान संशोधन के जरिये पंचायती राज की त्रिस्तरीय व्यवस्था का निर्माण किया गया। इस कानून ने तीन स्तरों जिला, मध्य क्षेत्र तथा गांवों, में हर पांच साल पर पंचायत चुनाव कराया जाना अनिवार्य किया। साथ ही राज्य निर्वाचन आयोग व राज्य वित्तीय आयोग का गठन तथा प्रत्येक जिले में जनसंख्या के हिसाब से सदस्यों और अध्यक्षों के चुने हुए पदों में कम से कम एक–तिहाई सीटें महिलाओं अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों के लिए आरक्षित करने का भी निर्देश दिया। संविधान ने पंचायतों को शक्तियों के हस्तांतरण करने का भी प्रावधान किया।

मणिशंकर अय्यर की अध्यक्षता वाली वस्तुओं तथा सेवाओं के बेहतर वितरण में पंचायतों के इस्तेमाल को लेकर बनी एक विशेषज्ञ कमेटी ने अप्रैल, 2013 में सौंपी अपनी रिपोर्ट में कहा कि अनुच्छेद 243 जी पंचायतों को स्वशासन के लिए शक्तियों तथा सत्ता के हस्तांतरण का निर्देश देता है ताकि वे अनुसूची 11 में दिये गए 29 विषयों की सूची से संबंधित आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की योजनाओं को बना सकें और उनका क्रियान्वयन कर सकें। फिर चाहे वे जनप्रतिनिधियों को केन्द्र सरकार की योजनाओं के जरिये दी गई हों अथवा राज्य सरकारों द्वारा उन्हें शक्तियां सौंपे जाने से प्राप्त हुई हों। अनुच्छेद 243 जेडडी में वर्णित मूलभूत योजनाओं से संबंधित प्रावधानों को अनुच्छेद 243 जी के साथ पढ़ा जाना चाहिए।

बीते बीस सालों में बहुत सारी चीजें बदल गई हैं। वर्ष 2004 के मध्य तक पंचायती राज का मामला ग्रामीण विकास मंत्रालय के अधीन आता था। शुरुआत में उन प्रावधानों पर अधिक ध्यान दिया गया जो 73वें संशोधन में बताए गए थे, जैसे कि पंचायतों में चुनाव कराना, उनका विस्तार 1996 में पारित अनुसूचित क्षेत्र कानून तक करना आदि। केन्द्र सरकार 243जी के तहत बताए गए कार्य और शक्तियों के हस्तांतरण तथा मूलभूत योजनाओं के लागू करने को लेकर गंभीर रही। स्पष्ट था कि इस सोच का पंचायतों के सशक्तीकरण तथा ग्राम सभाओं के विकास पर बेहतर प्रभाव पड़ रहा था। लेकिन साथ ही यह भी साफ था कि सशक्तीकरण तभी संभव था जब राज्य सरकारें पंचायतों में सत्ता का हस्तांतरण करें तथा उनके सही क्रियान्वयन के लिए राशि एवं अन्य संसाधन भी जारी करें। साथ ही पंचायतों के तीन स्तरों की भूमिका भी स्पष्ट हों।

मॉडल पंचायती राज कानून और पिछले वर्षों में किये गये कार्यों का मकसद अनुच्छेद 243जेडडी तथा 243जी के प्रावधानों को यथासंभव कार्यरूप में लाना था। 243जेडडी के नवनिर्मित पंचायती राज मंत्रालय में स्थानांतरण के बाद माना जा रहा था कि योजनाओं और पंचायतों की

सुधा पिल्लई

(पूर्व भा.प्र.से. अधिकारी सुश्री सुधा पिल्लई ने देश की विधि व्यवस्था में सुधार के लिए गहन कार्य किया है। वे योजना आयोग के सदस्य सचिव पद के अलावा कई महत्वपूर्ण पदों पर रह चुकी हैं। वे एस.के.ओ.सी.एच. डेवलपमेंट फाउंडेशन की फेलो भी हैं।)

भूमिकाओं में परस्पर मेल स्थापित होगा। पिछले वर्षों में जैसा कि परामर्शों में कहा गया और मणिशंकर अय्यर ने भी कहा कि पंचायती राज व्यवस्था को संस्थागत बनाने का शीर्ष स्तरों को मिला स्पष्ट आदेश आधारभूत योजनाओं और पंचवर्षीय योजनाओं तक नहीं पहुंच सका। न तो केन्द्र और न ही राज्य स्तर पर और न ही अनुच्छेद 243जी के तहत वर्णित शक्तियां ही पंचायतों को मिल सकी। पंचायत चुनाव कराए जा रहे हैं लेकिन फिर भी कुछ राज्य इसे टालने में सफल हो जाते हैं। झारखंड में राज्य बनने के 12 वर्ष के बाद पंचायत चुनाव कराए जा सके।

कई बार ये कहा जाता है कि अनुच्छेद 243जी में दिये गये 'सकते हैं' शब्द का अर्थ है कि पंचायतों को शक्तियां हस्तांतरित करना अनिवार्य नहीं है। मंत्री बनने के तुरंत बाद से ही मणिशंकर अय्यर ने राज्यों के साथ कई चक्रों की बातचीत कर 73वें संशोधन के हर पक्ष पर चर्चा करनी शुरू कर दी थी। सबसे पहले जुलाई, 2004 में जो राउंड टेबुल बैठक हुई वो कार्यों के हस्तांतरण को लेकर थी। राज्यों के साथ साझा बैठकों के बाद जो संकल्प पास हुआ उसमें उन कार्यों के पहचान किये जाने की बात की गई जिनका हस्तांतरण किया जा सकता था। साथ ही उन गतिविधियों को त्रिस्तरीय पंचायती व्यवस्था में सही जगह हस्तांतरित किया जाय और उसमें कोई गड़बड़ी न हो। राज्यों को कहा गया कि वे इसे वित्तीय वर्ष 2004–05 के बीच पूरा कर लें। मंत्रालय ने राज्यों को तकनीकी सहायता देने की भी पेशकश की। सबसे महत्वपूर्ण बात कि संकल्प में राज्यों से ऐसे उपाय अपनाने को कहा गया जिससे हस्तांतरण विधायी तरीके से हो, यह सुनिश्चित हो सके अथवा इसके लिए कोई वैकल्पिक विधायी तरीका अपनाया जा सके।

जहां तक वित्तीय संकल्प का संबंध है तो उसके लिए वित्तीय वर्ष 2005–06 के अंत तक एक रोडमैप बनाने को कहा गया जिसमें जनप्रतिनिधियों का समावेश राज्यों और केन्द्र के विभागीय बजट में कराने, जनप्रतिनिधियों को गतिविधियों पर आधारित खुले अनुदान का योजना आयोग का प्रावधान करना, राज्य वित्त आयोग के लिए रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए समय सीमा तय करना और सिफारिशों पर कार्य करना शामिल था। संकल्प में पंचायतों को अपने लिए संसाधन स्वयं जुटाने के लिए प्रोत्साहित करने की बात भी कही गई। अंत में इस संकल्प में ग्राम सभा को सशक्त करने के अनुच्छेद 243ए के तहत कुछ खास कदम उठाने को कहा गया। जनवरी, 2009 को राज्यों के मुख्य सचिवों को एक एडवायजरी जारी की गई और एक अप्रैल, 2009 को इसे राज्यों में लागू कर दिया गया।

अगस्त, 2006 में योजना आयोग ने जिलों के लिए योजना बनाने तथा उन्हें 11वीं पंचवर्षीय योजना तथा वार्षिक योजना के साथ जोड़ने के लिए दिशा–निर्देश जारी किये थे। कुछ राज्यों जैसे केरल ने विस्तृत दिशा–निर्देश जारी किये। केरल का उदाहरण दूसरे राज्यों के सामने भी रखा गया, विशेषकर ग्राम पंचायत के स्तर पर योजनाओं को लागू करने के मामले में। इंडियन इंस्टिच्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन ने इस साल की शुरुआत में एक पंचायत हस्तांतरण सूचकांक प्रकाशित की 'ऑपरेटिव कोर–डिवॉल्यूशन ऑफ फंड्स, फंक्शन्स एंड फंक्शनरिज'। सूचकांक के मुताबिक कुछ राज्यों ने अन्य राज्यों की तुलना में बेहतर प्रदर्शन किया। महाराष्ट्र, केरल, कर्नाटक, राजस्थान, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, हरियाणा, गुजरात, उड़ीसा, त्रिपुरा, उत्तराखंड तथा सिक्किम ने औसत से अच्छा प्रदर्शन किया। उत्तर प्रदेश, असम और हिमाचल प्रदेश मध्यम स्तर पर रहे जबकि सूचकांक के मुताबिक गोवा, पंजाब और बिहार हस्तांतरण के सबसे निचले स्तर पर रहे। जहां तक कार्य सौंपने की बात है तो कर्नाटक सूची में सबसे उपर है जबकि महाराष्ट्र कुल मिलाकर पहले पायदान पर है। केरल कुल मिलाकर तीसरे नंबर पर है लेकिन कार्य सौंपने के मामले में राजस्थान तीसरे पायदान पर आता है।

महाराष्ट्र सरकार ने एसएफसी का गठन किया, सूचना प्रौद्योगिकी आधारित ई–गवर्नेंस के लिए कदम उठाए और पंचायतों को लेवी टैक्स के लिए सशक्त बनाया। 11 प्रमुख विभागों की 102 योजनाओं को करीब 16 हजार कर्मचारियों के साथ पंचायतों में स्थानांतरित किया गया। हालांकि इसमें नकारात्मक पक्ष ये है कि इन 11 विषयों का हस्तांतरण पूरा नहीं हो सका है और जिन विषयों को नहीं सौंपा गया है उनपर काम करना पंचायतों के लिए कठिन है। इसके अलावा कर्मचारियों की संख्या जरूरत के हिसाब से काफी कम है।

आईआईपीए ने सूचकांक में कर्नाटक को कार्यों और वित्तीय मामालों के हस्तांतरण में दूसरे नंबर पर और पदाधिकारियों के हस्तांतरण के मामले में तीसरे नंबर पर रखा है। कर्नाटक पीआर एक्ट 1993 में विशेष कार्यों का विवरण दिया गया है। इसके अलावा पंचायतों की आजादी और सशक्तीकरण को गतिविधि मापक फ्रेमवर्क 2003 द्वारा सुरक्षित रखा गया है।

केरल ने 73वें संशोधन को लागू करने की दिशा में बेहतर प्रदर्शन किया है। राज्य के पंचायती राज कानून में मॉडल एक्ट के ज्यादातर प्रावधानों को लागू किया गया है। 17 कार्यों में हस्तांतरण दिखाई देता है। राज्य वित्त आयोग का गठन ससमय कर दिया गया है। पंचायतों के लिए जारी कोष राज्य योजना का एक–तिहाई हिस्सा है और इसे योजना में प्रदर्शित किया गया है। हालांकि यहां और ज्यादा प्रशिक्षित कर्मियों की जरूरत है ताकि वित्तीय एवं कार्यों की गुणवत्ता को बढ़ाया जा सके।

ऐसे ही उड़ीसा, छत्तीसगढ़ और गुजरात ने औसत से अच्छा प्रदर्शन कर पंचायतों में सत्ता और कार्यों का हस्तांतरण किया है। लेकिन कुछ राज्यों ने औपचारिक रूप से भी कोई मानचित्रण नहीं किया है। यहां हस्तांतरण अभी भी प्रारंभिक चरण में ही है। विशेषज्ञ कमिटी ने भी माना है कि इन राज्यों को कोई भी कार्य प्रोत्साहित नहीं कर पाए हैं।

(यह आलेख इनक्लूजन.स्काच.इन में प्रकाशित आलेख का हिंदी रूपांतरण है। इसे प्रकाशक की पूर्वानुमति से पुनः प्रकाशित किया जा रहा है।)

शहरी स्थानीय निकायों के लिए जेंडर बजटिंग

बजटिंग का तात्पर्य केवल दस्तावेज बना लेने भर से नहीं है बल्कि इसके तहत कार्य करने तथा प्रक्रियाओं की एक लंबी श्रृंखला है जो बजट की तैयारी करने से लेकर उसे लागू करने और उसके बाद की प्रक्रिया को आगे बढ़ाती है।

''जेंडर बजटिंग आवश्यक है ताकि स्त्री–पुरुष समानता के सिद्धान्त , लिंग आधारित भेदभाव के समापन और लैंगिक समानता को राज्य के हर विभाग की योजनाओं में ठोस तरीके से शामिल किया जा सके। यह अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने, उनके लिए आय के अवसर पैदा करने, उनकी क्षमता संवर्द्धन, शैक्षिक एवं रोजगारपरक योग्यता, बेहतर स्वास्थ्य और राजनीतिक सहभागिता तथा सामाजिक स्तर को उंचा उठाने में सहयोगी साबित होगा। तब सरकार का हर विभाग योजनाओं को बनाने, पॉलिसी तैयार करने, उनके लिए राशि आवंटित करने, उन्हें लागू करने तथा उनकी समीक्षा करने, महिलाओं के सामाजिक स्तर को मजबूत बनाने एवं राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से स्त्री–पुरुष में समानता स्थापित करने की दिशा में काम करेगा। जेंडर बजट को लागू करने और उसका फॉलो–अप करने की जिम्मेदारी राज्य महिला आयोग या उसके समकक्ष संस्था को दी जानी चाहिए।'' महिला नीति, 2013, महिला एवं बाल विकास विभाग, महाराष्ट्र सरकार।

जेंडर बजटिंग की तैयारी के लिए दिशा–निर्देश

शहरी स्थानीय स्वयं निकायों के लिए जेंडर बजट की पहल नीति निर्माण का ढांचा, विधि और म्यूनिसिपल काउंसिल और कॉर्पोरेशन के साथ चलने की मशीनरी के समान है जो बजट को जेंडर आधारित नजरिया प्रदान करता है। शहरी स्थानीय निकाय यानी पंचायती राज जिसे म्यूनिसिपल कॉर्पोरेशन तथा म्यूनिसिपल काउंसिल के नाम से जाना जाता है, के लिए जरूरी है कि वे वार्षिक वित्तीय लेखा–जोखा, नागरिक बजट आकलन, बजट प्रस्ताव, विभागवार प्रदर्शन बजट, वार्षिक योजना, आदिवासी उप योजना तथा अनुसूचित जाति योजना एवं बजट में जेंडर बजटिंग को शामिल करे। वृहद अर्थ में बजटिंग का तात्पर्य केवल दस्तावेज बना लेने भर से नहीं है बल्कि इसके तहत कार्य करने तथा प्रक्रियाओं की एक लंबी श्रृंखला है जो बजट की तैयारी करने से लेकर उसे लागू करने और उसके बाद की प्रक्रिया को आगे बढ़ाती है।

जेंडर बजटिंग की परिभाषा

◆ जेंडर बजटिंग चाहता है कि सरकारी बजटों को जेंडर के नजरिये से देखा जाय ताकि ये जाना जा सके कि विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की जरूरतें क्या हैं।

◆ जेंडर बजटिंग का अर्थ महिलाओं के लिए अलग से बजट बनाने से नहीं है बल्कि यह महिलाओं की जरूरतों को पूरा करने की दिशा में ठोस कदम की मांग करती है।

◆ जेंडर बजटिंग सरकारी रावस्व एवं व्यय का महिलाओं पर होने वाले प्रभाव को जानने का एक माध्यम है।

जेंडर बजटिंग और बजट में अंतर

प्रो. विभूति पटेल

(पीएचडी अर्थशास्त्र, अर्थशास्त्र विभाग प्रमुख, एसएनडीटी वीमेंस यूनिवर्सिटी, मुंबई तथा डायरेक्टर, सेंटर फॉर स्टडी ऑफ सोशल एक्सक्लूजन एंड इनक्लूजन पॉलिसी)

जेंडर बजटिंग एक प्रक्रिया है जो विभिन्न स्तरों पर जेंडर संबंधी दृष्टिकोण को बनाए रखता है जिनमें नीति समीक्षा, जरूरतों का आकलन, कार्यक्रम निर्माण, संसाधन आवंटन, योजनाओं को लागू करना, प्रभावों का आकलन, संसाधनों के पुनः प्राथमिकताकरण आदि शामिल हैं। जेंडर सेंसेटिव बजटिंग इन प्रक्रियाओं का परिणाम होता है।

जेंडर बजटिंग के उपकरण

1. आकलन के लिए चेकलिस्ट
2. कार्य प्रदर्शन का अंकेक्षण
3. सार्वजनिक व्यय का जेंडर आधारित प्रोफाइल बनाना
4. लाभुकों की जरूरतों का आकलन
5. प्रभाव का विश्लेषण
6. जेंडर के बिना सार्वजनिक व्यय तथा राजस्व लाभ का विश्लेषण
7. सहभागिता बजटिंग
8. स्थानिक आकलन – माइक्रो लेवल जरूरत के लिए माइक्रो लेवल योजना बनाना
9. जेंडर को मुख्यधारा में लाना यानी मुख्यधारा के सेक्टरों में जेंडर के प्रति उत्सुकता पैदा करना। इनमें से कुछ निम्न हैं :

◆ जन वितरण प्रणाली के तहत किरासन तेल की आपूर्ति सीमित करना क्योंकि महिलाओं को रसोई गैस की जरूरत अधिक है।

◆ छोटी बचत खातों पर मिलने वाली सब्सिडी तय करते समय भी जेंडर संबंधी दृष्टिकोण अपनाना, विशेषकर डाक बचतो पर जैसे कि राष्ट्रीय बचत योजना।

◆ करों के मामले में जेंडर को लेकर संवेदनशीलता से समीक्षा करना।

◆ मुद्रास्फीति के प्रभावों से बचने के लिए करों की उंची दरों अथवा सब्सिडी की कम दरों की अदला–बदली करना।
◆ माइक्रो–क्रेडिट सेक्टर में ब्याज दरों का नियमन करना।
◆ निम्न ब्याज दरों, स्वयं सहायता समूहों अथवा बीमा के जरिये महिलाओं की सामाजिक सुरक्षा बढ़ाने के प्रावधान करना।
◆ खेलों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाने के प्रयास करना और इसके लिए छात्रवृत्ति, हॉस्टल एवं अभ्यास करने की सुविधा बढ़ाना।
◆ न्यू एंड रिन्यूएवुल एनर्जी यानी डीएनइएस के मार्गदर्शन का काम पर्यावरण मंत्रालय को मिले।
◆ साफ रसोई तथा रोशनी ईंधन के लिए सीईआर क्रेडिट को अपनाने के समय शहरी रोजगार तथा गरीबी उन्मूलन पर जोर देना।

आंकड़ों एवं सूचकों में महिलाओं की दृश्यता

स्थानीय शहरी निकायों के लिए यह जरूरी है कि वे आंकड़े एकत्रित करने वाली एजेंसियों को आंकड़ों में महिलाओं की स्थिति स्पष्ट और दृश्य बनाने का निर्देश दें। डाटाबेस में स्त्री और पुरुषों के बीच अंतर के पांच क्षेत्रों पर अवश्य प्रकाश डालना चाहिए। वे पांच क्षेत्र अर्थव्यवस्था में भागीदारी, आर्थिक अवसर, राजनीतिक सशक्तीकरण, शैक्षिक उपलब्धि एवं सेहत हैं। ये पांचों श्रेणियां लैंगिक भेदभाव समाप्त करने के ठोस उपाय सुझाते हैं और भविष्य की नीतियों तथा जेंडर बजटिंग के लिए स्पष्ट ढांचा उपलब्ध कराते हैं।

बजट के जेंडर सेंसेटिव विश्लेषण के 7 उपकरण

1. लैंगिक जागरूकता नीति की समीक्षा
2. अलग–अलग जेंडर के लाभुकों का मूल्यांकन
3. अलग–अलग जेंडर के सार्वजनिक व्यय का विश्लेषण
4. अलग–अलग जेंडर के करों का विश्लेषण
5. अलग–अलग जेंडर के बजट पर प्रभाव का विश्लेषण
6. जेंडर आधारित मध्यावधि आर्थिक नीति ढांचा
7. जेंडर आधारित बजट ढांचा

जेंडर बजट सेल की संरचना एवं कार्य

जेंडर बजट सेल में शहरी स्थानीय निकायों (यूएलबी) के योजना, नीति, समन्वय, बजट तथा अकाउंट विभाग के वरिष्ठ एवं मध्यम श्रेणी के अधिकारियों को रखा जाना चाहिए। इसका नेतृत्व ज्वायंट कमिश्नर रैंक के अधिकारी द्वारा किया जाना चाहिए। सेल के कार्यों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है :

1. शहरी स्थानीय निकायों द्वारा अपनाए गए कम से कम तीन छोटे तथा तीन बड़े कार्यक्रमों की पहचान करना और उनका जेंडर की दृष्टि से विश्लेषण करना।
2. उक्त कार्यक्रमों के वास्तविक लक्ष्यों की समीक्षा करने के लिए ऑडिट करना तथा बाधा पाए जाने पर आधारभूत संरचनाओं तथा डिलीवरी सिस्टम को मजबूत बनाना।
3. शहरी स्थानीय निकायों के अंतर्गत मौजूद जेंडर बजट सेल के साथ बैठक व विमर्श, निकायों की चुनी हुई महिला प्रतिनिधियों तथा नागरिक समाजों एवं एनजीओ के साथ सलाह करना।
4. इनसे प्राप्त नतीजों पर आगे की नीति तैयार करना।
5. शहरी स्थानीय निकायों के स्तर पर प्रशिक्षण कार्यक्रम, क्षमता संवर्द्धन तथा कार्यशाला आयोजन करना।

6. सरकारी विभागों तथा उपक्रमों में महिलाओं के लिए माहौल सुगम बनाने के लिए जेंडर बजट सेल पहल कर सकता है।
7. उन सरकारी विभागों अथवा शहरी स्थानीय निकायों के कामों को प्रसारित करना जिन्होंने अपने कार्यक्रमों को जेंडर दृष्टिकोण के साथ अपनाया।
8. शहरी स्थानीय निकायों के अंतर्गत आने वाले सेक्टरों के लिए जेंडर दृष्टिकोण वाले चैप्टर तैयार करना।

शहरी स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए संसाधन जुटाने पर खर्च एवं आवंटन

एनआईपीएफपी ने जेंडर ऑडिट तथा जेंडर बजटिंग के लिए कार्यक्रमों एवं योजनाओं के वित्तीय आवंटन के लिए निम्न वर्गीकरण की सिफारिश की है :

◆ महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की ऐसी महिला केन्द्रित योजनाएं जिनमें सौ फीसद आवंटन महिलाओं पर किया जाना हो।
◆ महिलाओं के पक्ष में ऐसी योजनाएं जहां 30 फीसद आवंटन तथा लाभ महिलाओं पर किया जाना हो, जैसे–गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम।
◆ समुदाय के लिए तैयार की गई योजनाएं जो जेंडर निष्पक्ष हों, जैसे कि रोजगारोन्मुख योजनाएं जेएनएनयूआरएम आदि।
◆ आपदा प्रबंधन के लिए शेष योजनाएं।

संरक्षात्मक व हितकारी सेवाओं के लिए बजटीय आवंटन

ये ऐसी योजनाएं हैं जो विपदा के समय महिलाओं को सीधे तौर पर फायदा पहुंचाती हैं। महिलाओं की सामाजिक–सांस्कृतिक तथा आर्थिक अधीनता के कारण उत्पन्न अमानवीय परिस्थितियों में ये योजनाएं लाभ देती हैं तथा हिंसा से पीड़ित महिलाओं, विधवा अथवा परित्यक्ताओं के लिए आश्रय, अल्पावास गृह और पुनर्वास जैसी सुविधाएं उपलब्ध कराती हैं। सामाजिक सुविधाओं में व्यय, क्षमता संवर्द्धन, घरेलू कार्यों में कमी तथा महिलाओं एवं लड़कियों का जीवन सुधारने के लिए बजटीय आवंटन :

◆ शिक्षा
◆ स्वास्थ्य
◆ क्रेश
◆ कामकाजी महिलाओं के लिए हॉस्टल
◆ आवास
◆ पोषण
◆ जलापूर्ति
◆ स्वच्छता–शौचालय, जल निकासी
◆ ईंधन
◆ कचरा प्रबंधन
◆ परिवहन

महिलाओं को आर्थिक अवसर प्रदान करने के लिए बजटीय आवंटन

◆ स्वयं सहायता समूह को कर्ज तथा स्व रोजगार कर रहीं महिलाओं को लोन
◆ तरक्की के मौके देने वाले सेक्टरों, यथा–बायोटेक्नोलॉजी, आईटी इत्यादि में व्यावसायिक प्रशिक्षण
◆ परिवहन व उर्जा जैसे आधारभूत सेक्टर
◆ शहरों में फ्लैटों तथा किराये के मकानों में 10 फीसद महिलाओं के लिए सुरक्षित
◆ महिला उद्यमी तथा स्व रोजगार कर रहीं महिलाओं के लिए मार्केटिंग की सुविधा, बिजनेसवुमेन तथा वेंडरों के लिए म्यूनिसिपल मार्केटों व हाटों में 10 फीसद दुकानें आरक्षित,
◆ महिलाओं के लिए बिना भुगतान वाले सार्वजनिक शौचालय
◆ कामकाजी महिलाओं के लिए परिवहन की सुरक्षित व्यवस्था
नियामक संस्थाओं एवं सेवाओं में बजटीय आवंटन

नियामक सेवाओं के लिए बजटीय आवंटन

◆ राज्य महिला आयोग अथवा महिलाओं के लिए निगम आयोग
◆ म्यूनिसिपल इकाइयों में महिला विकास सेल
◆ संगठित एवं असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं के साथ यौन उत्पीड़न रो. कने के लिए वार्ड के स्तर पर महिला विकास सेल बनाना तथा उनके लिए बजटीय आवंटन करना
◆ पुलिस थानों, एलएसजी निकायों, निगम के अस्पतालों तथा स्कूलों में महिला सेल बनाना
◆ जागरूकता कार्यक्रम चलाना।

एक अहम चुनौती

महाराष्ट्र सरकार के 2005 के वीमेन कंपोनेंट प्लान के तहत जो वादे किये गये थे उन्हें अभी तक पूरा नहीं किया जा सका है। इनमें गरीबी उन्मूलन की सभी योजनाओं तथा विकास योजनाओं में महिलाओं को 30 फीसद तक आवंटन करने का संकल्प शामिल है। इन्हें तुरंत लागू किया जाना चाहिए। राज्य तथा केंद्र सरकारों के स्तर पर सभी विभागों के कामों का जेंडर ऑडिट होना चाहिए। कई बार जेंडर बजट के तहत किये गये आवंटन समय पर पहुंच नहीं पाते और इस प्रकार बिना खर्च किये ही रह जाते हैं। ऐसे में पारदर्शिता बनाए रखने के लिए आवंटित राशि की सतत निगरानी की जरूरत है।

भूमि अधिकार और पंचायत की भूमिका

किसी भूखंड का मालिक होने का महिलाओं को भी उतना ही हक है जितना कि पुरुषों का। कृषि भूमि पर उनके अधिकार और भूमि आधारित आजीविका के महत्व को गुजरात के स्वयंसेवी संगठनों तथा तरक्कीपसंद लोगों ने बखूबी समझा और वर्ष 2003 में वर्किंग ग्रुप फॉर वुमेन एंड लैंड ओनरशिप (डब्ल्यूजीडब्ल्यूएलओ) का गठन किया। 41 सीबीओ, एनजीओ तथा अन्य के संयुक्त फोरम वाले इस ग्रुप की आज राज्य के 17 जिलों में उपस्थिति है। पिछले एक दशक से ज्यादा समय से डब्ल्यूजीडब्ल्यूएलओ ग्रामीण इलाक. ों में इस मुद्दे को लेकर जागरूकता अभियान चला रहा है, लोगों को समझा रहा है और कई जगहों पर राज्य सरकार के साथ मिलकर कार्यक्रम भी चला रहा है।

शिल्पा वसावड़ा
(डब्ल्यूजीडब्ल्यूएलओ की संयोजक)

तथा

मीना राजगोड़
(कार्यक्रम समन्वयक, कच्छ महिला विकास संगठन, गुजरात)

ग्राम पंचायत संग कार्य

12 वर्षों में डब्ल्यूजीडब्ल्यूएलओ ने अपने कई हितधारकों की पहचान की है जो महिलाओं के जमीन पर हक को लेकर सक्रिय और महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है और ग्राम पंचायत उनमें से एक है। इस ग्रुप के सदस्यों ने गांव के राजस्व अधिकारी, पटवारी, की भूमिका को भी अत्यंत प्रभावकारी माना और उनके साथ भी वर्षों काम किया। अपने गठन के बाद से ही डब्ल्यूजीडब्ल्यूएलओ ने महिलाओं को उनका हक सुनिश्चित कराने के लिए जमीनी स्तर पर काम करना शुरू किया और इस सोच को परिवार से ही आगे बढ़ाने के लिए व्यावहारिक तरीकों को अपनाने की कोशिश की। इस प्रयास ने आगे चलकर महिलाओं को सुझाव तथा जानकारी देने वाले पारा लीगल कार्यकर्ताओं की एक कतार का निर्माण कर दिया।

डब्ल्यूजीडब्ल्यूएलओ के गठन के शुरुआती 5–6 वर्षों में ही इसके सदस्यों ने यह महसूस किया कि केवल परिवार के स्तर पर अभियान चलाना ही काफी नहीं होगा बल्कि इसकी जड़ें उस पितृसत्तात्मक नकारात्मक सोच में छिपी हैं जो औरतों को जमीन के लिए आश्रित बनना सिखाती है। चाहे अपने पिता के घर में या पति के घर में।

ग्रुप ने अनुभव किया कि यदि गांवों में जमीनी स्तर पर काम करने वाले लोगों को साथ लिया जाय तो इस सोच से मुक्ति पाई जा सकती है। उन्होंने सरपंच, चुने हुए जनप्रतिनिधियों, ग्राम सभा तथा पटवारी जैसे लोगों की ताकत को समझा और उनके साथ मिलकर काम करने का फैसला लिया।

पंचायती राज एक्ट, 1993 के कलम 55 के मुताबिक, गांव की राजस्व सीमा के भीतर पटवारी जमीन से जुड़े हर रिकॉर्ड और वसीयत को अपडेट रखता है। गुजरात में पटवारी ग्राम पंचायत का सचिव भी होता है तो इस नाते उसका काम ग्राम सभा आयोजित कराना और जन्म तथा मृत्यु का निबंधन कराना आदि भी है। इसके अलावे उसके कई और अहम कार्य होते हैं :

मृत्यु का निबंधन कराना

मृत्यु का निबंधन कराने की जिम्मेदारी भी ग्राम पंचायत की कार्य सीमा के भीतर है लेकिन इस बारे में आम लोगों में जानकारी का स्तर बहुत निम्न है। विशेषकर महिलाओं के लिए इसको जानना और भी जरूरी हो जाता है। पंचायत के कानूनों के मुताबिक मृत्यु के बाद 21 दिन से लेकर एक साल की अवधि तक ग्राम पंचायत में मामूली फीस देकर मृत्यु का निबंधन कराया जा सकता है। उसके बाद तहसील पंचायत और एक साल के बाद कोर्ट में निबंधन कराया जा सकता है। एक महिला, जिसके पति की मृत्यु हुई हो, न तो उर्जा के स्तर पर और न ही धन के स्तर पर इस हाल में होती है कि वह मृत्यु का निबंधन कराने के लिए दफ्तरों के चक्कर लगा सके। इसके अलावा सामाजिक स्तर पर भी इस काम में उसका साथ देने वाले कम ही होते हैं। यहां पर पटवारी या सरपंच की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है।

गुजरात के भावनगर जिले के घोघा तहसील के सात गांवों में 45 विधवाएं ऐसी हैं जिनके पास अपने पति की मृत्यु का प्रमाण पत्र नहीं है जिसके कारण उनकी आजीविका का श्रोत, उनकी जमीन खतरे में है।

परिवार वृक्ष बनाना

हर प्रकार की संपत्ति के हस्तांतरण के लिए परिवार वृक्ष का होना सबसे मूलभूत जरूरत है। इसे सरपंच तथा पीआरआई की उपस्थिति में पटवारी द्वारा बनाया जाता है। लेकिन महिलाओं को लेकर समाज की सोच ऐसी कुत्सित है कि जब पिता के घर में परिवार वृक्ष बनवाया जाता है तो बेटियों का नाम नहीं बताया जाता है। वहीं ससुराल में यदि बहू विधवा है तो मरे हुए बेटे का भी जिक्र नहीं किया जाता है, ताकि संपत्ति पर विधवा बहू अपना हक नहीं जता सके।

संपत्ति के कागजातों के लिए आवेदन करना

अगर बेटी अपनी संपत्ति के कागजातों को जारी करवाना चाहे तो उसे पटवारी के सम्मुख आवेदन करना होता है। कई बार उस पर भारी दवाब रहता है। इस मौके पर पटवारी स्वस्थ भूमिका निभा सकता है और बेटियों तथा विधवा बहुओं का दवाब कम करने में मदद कर सकता है।

भूमि के रिकॉर्ड को अपडेट रखना

वसीयतों को आम तौर पर एक समय सीमा के भीतर बनवा लिया जाता है। हालांकि कई जगहों पर यह एक पीढ़ी से ज्यादा समय तक के लिए लंबित हो जाती है। ऐसे में गुजरात सरकार ने वर्ष 2014 में वसीयतों के निर्माण को लेकर द्रुत गति से काम करने पर जोर दिया। वसीयतों के अधिक समय तक लंबित रहने का सबसे बुरा खामियाजा महिलाओं को भुगतना पड़ता है क्योंकि उनके पास जमीन के अपने दावे का कोई ठोस आधार नहीं रह जाता है।

सर्वे नंबर उपलब्ध कराना

जमीन के कागजातों के कंप्यूटरीकृत किये जाने के बाद से अगर किसी को जमीन के रिकॉर्ड के बारे में जानकारी चाहिए तो उसे सर्वे नंबर के बारे में पता होना जरूरी है। गांवों में पटवारी या जनप्रतिनिधियों के पास सर्वे नंबर उपलब्ध होता है। विशेषकर महिलाओं के लिए इस नंबर का पता लगा पाना मुश्किल होता है इसलिए पटवारी बड़े सहायक साबित हो सकते हैं।

महिलाओं के भूमि अधिकार के संबंध में सरपंच और जनप्रतिनिधियों को संवेदनशील बनाना

सरपंच को प्राप्त शक्तियों के माध्यम से वे महिलाओं के जमीन के अधिकार को लेकर बड़ा बदलाव ला सकते हैं। उनके पास जमीन के कागजातों को प्रमाणित करने का अधिकार होता है। साथ ही वे सामाजिक तथा राजनीतिक रूप से भी बहुत शक्तिशाली होते हैं। उनका राजस्व अधिकारियों पर बड़ा प्रभाव होता है और वे चाहें तो जमीन से जुड़े लंबित मामलों को सुलझाने के लिए उन पर दवाब भी डाल सकते हैं। सरपंच के अधिकारों को समझते हुए डब्ल्यूजीडब्ल्यूएलओ ने उनके साथ मिलकर महिला अधिकारों के प्रति जागरूकता लाने की कोशिश की। केएमवीएस और आनंदी जैसे इसके सदस्य एक–एक सरपंच से मिले और अंत में इसका अच्छा परिणाम भी सामने आया।

दाहोद जिले के लवारिया गांव के सरपंच जसुभाई के साथ आनंदी की टीम ने मुलाकात की और उनकी बातों से प्रभावित होकर जसुभाई ने अपने गांव में वसीयत को लेकर एक कैंप का आयोजन किया। एक सप्ताह तक चले कैंप में सरपंच ने उन 13 महिलाओं को जमीन के कागजात सौंपे जिनके मामले पिछले कई सालों से लंबित थे। इसके लिए उन्होंने पटवारी को जरूरी कागजात देने और महिला के ससुराल वालों को राजी करने जैसे कामों का सहारा लिया।

चार जिलों में महिला जनप्रतिनिधियों के साथ मिलकर काम करना

पंचायत चुनाव में महिलाओं को आरक्षण दिये जाने का सबसे बड़ा प्रभाव महिलाओं के जीवन पर ही पड़ा है। न केवल चुनी हुई महिला जनप्रतिनिधियों बल्कि आम महिला मतदाताओं के जीवन पर भी उतना ही गहरा असर पड़ा है। महिला जनप्रतिनिधि महिलाओं से जुड़े मुद्दों को लेकर जितनी संवेदनशील रहीं उतने पुरुष प्रतिनिधि नहीं रहे। महिला स्वराज अभियान ने अपने अध्ययनों में पाया कि महिला जनप्रतिनिधियों वाले स्थानों में महिला समस्याओं को प्रमुखता से उठाया जा सका। ऐसे में यह महसूस किया गया कि इन स्थानों में महिलाओं के जमीन अधिकार से संबद्ध मामलों को भी ज्यादा मुखर तरीके से सामने लाया जा सकता है। डब्ल्यूजीडब्ल्यूएलओ ने महिला स्वराज अभियान को साथ लिया और 2005 में कच्छ और दाहोद में विधवाओं की वसीयत के लिए कैंप आयोजित किया। इस कैंप ने एक एक्शन रिसर्च प्रोजेक्ट के रूप में महिला सरपंचों के क्षमता संवर्द्धन के लिए काम किया। शुरुआती प्रशिक्षणों में व्यापक दृष्टिकोण अपनाना, महिलाओं के रास्ते में आने वाली बाधाओं को पहचानना और महिलाओं के जमीन के अधिकार को सुनिश्चित करने में महिला सरपंचों की भूमिका के बारे में बताया गया। प्रशिक्षण कार्यक्रम का अंत उनके गांवों में कार्ययोजना बनाने के साथ हुआ। जो योजनाएं बनीं उनमें निम्न शामिल रहे :

- जमीनों के साझा मालिकाना हक के लिए गांव में अभियान चलाना
- अपनी बेटी को जमीन का हक देकर उदाहरण प्रस्तुत करना
- वसीयत को लेकर ज्यादा से ज्यादा जानकारी जुटाना और पटवारी के साथ काम कर महिलाओं की समस्या को समझना
- विधवाओं से जुड़े मामलों की पहचान करना

तहसील स्तर पर सरपंचों के लिए कार्यशाला

2014 में गुजरात के स्टेट इंस्टीच्यूट ऑफ रूरल डेवलपमेंट ने 15 तहसीलों में पटवारियों तथा सरपंचों के लिए एक दिवसीय कार्यशाला आयोजित करने के लिए डब्ल्यूजीडब्ल्यूएलओ को आमंत्रित किया। 15 तहसीलों में हुए कार्यक्रमों का प्रभाव 585 सरपंचों तक हुआ और उनकी ओर से जबर्दस्त रुझान देखने को मिला। कार्यक्रम का आयोजन लैंगिक समानता स्थापित करने में सरपंचों की भूमिका, ग्राम सभा में महिलाओं की भागीदारी, महिलाओं की बाधाओं तथा उन्हें दूर करने में सरपंचों की भूमिका को लेकर किया गया था।

महिला ग्राम सभा में महिलाओं के भूमि अधिकार के मामले का उठाना

वर्ष 2013 में गुजरात सरकार ने गांवों में महिला ग्राम सभाओं के आयोजन का निर्देश दिया। मकसद था महिलाओं की समस्याओं को सार्वजनिक मंच पर उठाना। डब्ल्यूजीडब्ल्यूएलओ ने इसका फायदा उठाया और इन सभाओं में महिलाओं के भूमि अधिकार से संबंधित मामलों को उठाने पर जोर दिया। जाहिर है गांव के लोगों के सामने जो मुद्दे लाए जाते उनका समाधान जल्दी होता। ऐसी ही सोच के साथ दिसम्बर, 2013 में 13 जिलों के 15 तहसीलों के 64 गांवों में डब्ल्यूजीडब्ल्यूएलओ ने एनजीओ तथा सीबीओ के पारा वर्करों को ट्रेनिंग दी जिन्होंने महिलाओं के भूमि अधिकार के मुद्दों को ग्राम सभाओं के सामने रखा। कुछ जगहों पर सभा के दौरान पुरुषों ने महिलाओं के भूमि अधिकार को लेकर आपत्तियां कीं लेकिन ज्यादातर जगहों पर ग्राम सभाओं ने इसे स्वीकार किया। कई लंबित मामलों को जल्दी निबटाने की बात की गई तो साथ ही साथ जमीन के रिकॉर्ड को अपडेट करने, घर की बेटियों और विधवा महिलाओं का नाम इसमें शामिल कराने और बन चुकी वसीयतों को पढ़कर सुनाए जाने जैसे विषयों पर भी बात हुई। इसके बाद विभिन्न ग्राम सभाओं ने जो प्रस्ताव पास किया उसमें बड़ी बातें शामिल की गईं

- गांव में होने वाली मौतों का निश्चित रूप से निबंधन कराया जाय और उसकी सूची को सार्वजनिक किया जाय
- उत्तराधिकारी घोषित करने की प्रक्रिया तय समय पर शुरू की जाय
- उत्तराधिकार के असाधारण मामलों, विशेषकर विधवाओं के मामलों को तत्परता से निबटाया जाय
- गांव की बेकार जमीनों के आवंटन में विधवाओं तथा भूमिहीनों को प्राथमिकता दी जाय।

डब्ल्यूजीडब्ल्यूएलओ ने पाया है कि अगर महिलाओं के भूमि अधिकार के मुद्दे पर काम करना है तो जनप्रतिनिधियों के साथ काम करना अत्यंत आवश्यक है। सरपंच के पास ताकत है। सरपंच और पटवारी जमीनों के रिकॉर्ड को लेकर बेहद जरूरी जानकारियां रखते हैं। ग्राम सभा में मामलों को उठाने का असर होता है और वसीयत के मामलों को यहां उठाने से सरपंच और राजस्व अधिकारियों की जवाबदेही बढ़ती है।

औरतों को मिले राजनीतिक बदलाव का मौका

देवकी जैन

गरीबी, जितनी कि एक सामाजिक और राजनीतिक दशा है, उससे भी अधिक एक आर्थिक समस्या है और इसीलिए शक्ति की सीमा के भीतर सामाजिक और राजनीतिक बदलाव होना जरूरी है। समानता का सिद्धान्त तब तक लागू नहीं किया जा सकता जब तक कि हर वर्ग का विस्तृत प्रतिनिधित्व न हो, खासकर उनका जिन्हें सत्ता और शक्ति से दूर रखा गया है और निर्णय लेने में हर प्रकार के विचारों का समावेश न हो। इस व्यापक प्रतिनिधित्व तथा हाशिये पर छोड़ दिये गये समूह के राजनीतिक शक्तिकरण के लिए आवश्यक है कि वर्तमान प्रशासनिक एवं राजनीतिक संरचना तथा उनके नियमों में संशोधन किया जाय।

जनप्रतिनिधि हमें इस सच्चाई से वाकिफ कराते हैं कि सत्ता छोड़ देने की चीज नहीं होती बल्कि यह तोल–मोल करने और कई बार छीन लेने के लिए होती है। राजनीतिक परिवर्तन को कानून की सीमा के भीतर बाधित करने के कारण ऐसे परिवर्तनों की गति और दिशा दोनों बदले हैं। वास्तव में लोकतांत्रिक राजनीति निहित हितों का खेल है और जनप्रतिनिधियों की उपलब्धियां महिलाओं और राजनीतिक प्रक्रियाओं के आपसी निहित हितों का जनादेश। जनप्रतिनिधियों से मिली सीख स्पष्ट है –अगर जमीन से जुड़े संगठनों, महिलाओं के साहस और स्पष्टता को नीति बनानी है तो यह काम किसी बौद्धिक तरीके से नहीं होगा बल्कि राजनीतिक व्यवस्था के भीतर उनकी आवाज को शक्ति देने की किसी योजना के तहत होगा। ऐसे में कह सकते हैं कि महिलाओं को राजनीति में लाना केवल समानता और असमान प्रतिनिधित्व प्रणाली को दुरुस्त करने तक ही सीमित नहीं है।

1995 में कोपेनहेगेन में सामाजिक विकास पर हुए वर्ल्ड समिट में गरीबी को दूर करने, पूर्ण रोजगार प्रदान करने तथा सामाजिक एकता पर चर्चा की गई। कई ने माना कि इन चीजों को बिना लोकतांत्रिक पद्धति के पूर्णरूपेण नहीं पाया जा सकता। राजनीतिक पुनर्निर्माण ही आर्थिक विकास के साथ न्याय पाने की कुंजी है। जनप्रतिनिधि भी यह दिखा रहे हैं कि कैसे स्थानीय निकायों को प्रतिनिधि निकायों में परिवर्तित कर वे पर्यावरणीय रूप से ज्यादा सुरक्षित हो रहे हैं। हमारे देश में जनप्रतिनिधित्व महिलाओं को राजनीतिक नेतृत्व प्राप्त करने का मौका देता है लेकिन यह तभी संभव है जब हम महिलाओं को अपनी ताकत के इस्तेमाल का अवसर प्रदान करें।

(यह आलेख एसडीएनपी.यूएनडीपी.ऑर्ग में प्रकाशित आलेख का एक अंश है।)

आदिवासी स्वशासन और पेसा

आदिवासी जीवन दर्शन और जीवन शैली गैर आदिवासी दर्शन और शैली से बहुत भिन्न और पृथक है। दोनों के बीच की दूरी इस हद तक है कि कई बार गैर आदिवासी या तो आदिवासियों को पिछड़ा समुदाय मानते हैं और उन्हें 'मुख्यधारा' से जोड़ने के पैरोकार होते हैं या फिर वे आदिवासी संस्कृति को रुमानियत के साथ देखते हैं और हर बदलाव से दूर रखना चाहते हैं। दोनों ही परिस्थितियों में गैर आदिवासियों की समझ ये होती है कि उनके पास वह ज्ञान और विशेषता है जो आदिवासियों का भविष्य तय कर सकती है।

कीर्ति

नेशनल कोऑर्डिनेटर, कैरीटास इंडिया (CARITAS INDIA)

दूसरी ओर, आदिवासियों ने बाहरी हस्तक्षेप को सदैव नकारा है। कई मौकों पर उनके प्रतिरोध ने हथियारबंद संघर्ष का रूप लिया है, जैसे कि अंग्रेजी शासन के खिलाफ। आदिवासियों के प्रचंड विरोध को देखते हुए तब अंग्रेजों ने आदिवासी क्षेत्रों के लिए अल्पतम हस्तक्षेप और नरम प्रशासन की नीति अपनाई और उन्हें आम कानूनों के दायरे से बाहर रखा। बाद में उनकी विशिष्टताओं तथा विभिन्नताओं को पहचानते हुए संविधान निर्माताओं ने भी आदिवासी क्षेत्रों की शासन प्रणाली हेतु विशेष प्रावधान किये। संविधान की छठी अनुसूची में आदिवासी सघन इलाकों (आदिवासी क्षेत्र) के लिए अलग प्रावधान किये गये जबकि देश के बाकी हिस्सों के आदिवासी बहुल इलाकों को पांचवीं अनुसूची में अनुसूचित क्षेत्र के नाम से विशेष स्थान दिया गया। इन क्षेत्रों के आर्थिक उन्नयन के लिए विशेष आदिवासी सब प्लान भी बनाए गए।

अनुसूचित क्षेत्रों के लिए वैधानिक शक्तियां केवल राज्यपाल के पास हैं और वे किसी भी केन्द्रीय अथवा राज्य के कानून में संशोधन कर उसे अनुसूचित क्षेत्र में लागू कर सकते हैं या उन्हें पूर्णतया अनुपयुक्त घोषित कर सकते हैं। लेकिन अब तक के अनुभव बताते हैं कि राज्यपालों की उपेक्षा की वजह से अनुसूचित क्षेत्रों में आम कानून अंधाधुंध तरीके से लागू किये गये और ऐसा करने में आदिवासी संस्कृति, आजीविका, जीवनशैली, सामाजिक ताने–बाने, परम्परा और यहां तक कि मानवीय सम्मान तथा संवेदनाओं की भी परवाह नहीं की गई। यही कारण रहा कि तमाम संरक्षणात्मक कानूनों के बाद भी आदिवासियों की दशा में लगातार गिरावट आती जा रही है। आदिवासी क्षेत्रों में मौजूद विपुल प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की प्रक्रिया में आदिवासियों का शोषण होता गया। उनकी परम्परागत प्रशासकीय संस्थाओं तथा कोर्ट–कचहरियों जैसी मुख्यधारा की संस्थाओं के बीच विरोध बढ़ता गया। गैर आदिवासियों के प्रभुत्व ने समय के साथ आदिवासियों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक रूप से हाशिये पर धकेल दिया।

अनुसूचित क्षेत्रों में पंचायती राज

संविधान के 73वें और 74वें संशोधन से अनुसूचित क्षेत्रों में आशा की नई किरण जगी। अब पंचायतों में चुनाव के साथ–साथ पंचायतों को प्रशासनिक तथा आर्थिक शक्तियां हस्तांतरित करने का एक मॉडल बनाया गया। इन संशोधनों की खासियत यह थी कि पहली बार एक केन्द्रीय कानून बना जो स्वतः ही अनुसूचित क्षेत्रों पर लागू नहीं हुआ। संसद को जिम्मेदारी मिली कि इन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त कानून तैयार करे। परंतु जब 1994 तक संसद में इस पर कोई पहल होती नहीं दिखी तो जन संगठनों और गैर सरकारी संस्थाओं ने राष्ट्रव्यापी

आंदोलन किया। इसके फलस्वरूप 10 जून, 1994 को दिलीप सिंह भूरिया कमेटी का गठन किया गया। कमेटी का उद्देश्य पंचायती राज कानून में उपयुक्त बदलाव प्रस्तावित करना था ताकि अनुसूचित क्षेत्रों में मौजूद आदिवासियों की परम्परागत स्वशासन की व्यवस्था को तोड़े नहीं बल्कि और मजबूत करे। इन प्रयासों के अंतर्निहित समझ (जो आदिवासी समाज की वास्तविकताओं पर आधारित थी) यह थी कि आदिवासी स्वशासन की व्यवस्थाएं मौजूदा अन्य सभी व्यवस्थाओं से विचार तथा व्यवहार में कहीं ज्यादा जनतांत्रिक हैं। आदिवासी समाज में पंचायती राज के सिद्धांतों के अनुरूप सामुदायिक भावना प्रबल है और गैर–बराबरी नगण्य है। परम्परागत आदिवासी स्वशासन प्रणाली में समाज के सभी पहलू–उत्पादन, संरक्षण, न्याय, विकास, सामाजिक प्रबंधन, प्रशासन–इत्यादि शामिल हैं।

भूरिया कमेटी ने जनवरी, 1995 में अनुशंसा की कि आदिवासी परम्परागत संस्थाओं की बुनियाद पर एक वैकल्पिक प्रशासन तंत्र का निर्माण किया जाय जिसका संविधान के नीति निदेशक तत्वों तथा छठी अनुसूची के साथ तालमेल भी हो। एक बार फिर भूरिया कमेटी की सिफारिशों को लागू करवाने के लिए जन संगठनों को प्रबल प्रयास करना पड़ा। दिसम्बर, 1996 में कुछ संशोधनों के साथ विस्तार अधिनियम (पेसा) द्वारा पंचायती राज अधिनियम को अनुसूचित क्षेत्रों में भी लागू किया गया। यह अधिनियम आदिवासियों को स्थानीय शासन में स्थान देने के लिए बनाया गया एक पूरक कानून है। अनुसूचित क्षेत्रों की विशिष्ट जरूरतों के हिसाब से यह राज्य पंचायत अधिनियमों पर विशेष शर्त लगाता है। देश के नौ राज्यों में अनुसूचित क्षेत्र हैं – आंध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, तेलंगाना, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा और राजस्थान। इनमें से बिहार को छोड़कर बाकी सभी राज्यों ने पेसा का अनुपालन किया है।

पेसा यह सुनिश्चित करता है कि अनुसूचित क्षेत्रों में उपयुक्त स्तरों पर ग्राम सभा और पंचायत के कार्यों और अधिकारों का दायरा बढ़े। यह त्रिस्तरीय व्यवस्था में ग्राम सभा को बुनियाद मानते हुए उसे सबसे शक्तिशाली बनाता है। जिला परिषद, पंचायत समिति व ग्राम पंचायतों से ज्यादा यह ग्राम सभा को प्राकृतिक संसाधनों, बजट, विकास योजनाओं, कार्यक्रमों, परियोजनाओं और सरकारी कर्मियों पर अभूतपूर्व अधिकार देता है। यह आदिवासियों के रीति–रिवाजों, सामुदायिक संसाधनों, विवाद सुलझाने की परम्परागत पद्धतियों को मान्यता प्रदान करता है। तात्पर्य यह कि अनुसूचित क्षेत्रों में ग्राम सभा अपने परम्परागत कानूनों के अनुसार भी विवादों का निबटारा कर सकती है। यह अधिनियम आदिवासियों को प्रतिकूल बाहरी प्रभावों से अपनी रक्षा और भीतरी समस्याओं का समाधान करते रहने के उनके मौलिक अधिकार को सुनिश्चित करता है। यही वजह है कि इसे अनौपचारिक तौर पर आदिवासी स्वशासन अधिनियम भी कहा जाता है।

अनुसूचित क्षेत्रों में ग्राम सभा की शक्तियां

पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों में विस्तार) अधिनियम 1996 के अनुसार राज्यों को भी निर्देश दिया गया है कि वे पंचायतों और ग्राम सभा के उपयुक्त स्तरों पर निम्नलिखित शक्तियां दे –

1. छोटे खनिजों के खनन लाइसेंस या लीज के लिए ग्राम सभा की सिफारिश अनिवार्य है।
2. ग्राम सभा को आदिवासी उप योजना सहित स्थानीय योजनाओं और संसाधनों पर नियंत्रण करने का अधिकार है।
3. विकास योजनाओं के लिए भूमि अधिग्रहण करने के पहले ग्राम सभा या पंचायत से परामर्श लेना होगा।
4. ग्राम सभा का लघुवन उपज पर मालिकाना हक होगा।
5. छोटे जल श्रोतों की योजना और प्रबंधन का काम पंचायतों को सौंपा गया है।
6. ग्राम सभा सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए योजनाओं, कार्यक्रमों और परियोजनाओं का अनुमोदन करेगी। वह गरीबी दूर करने तथा अन्य कार्यक्रमों के लाभार्थियों को निर्धारित करेगी।
7. ग्राम सभा योजनाओं और कार्यक्रमों के लिए पंचायतों को निधियों के उपयोग का प्रमाणा पत्र जारी करेगी।
8. वह मादक द्रव्यों की बिक्री और सेवन पर नियंत्रण करेगी।
9. ग्राम सभा को भूमि हस्तांतरण रोकने और गैर कानूनी ढंग से ली गई भूमि सही मालिकों को वापस दिलाने का अधिकार है।
10. उसे गांवों के घट–बाजारों का प्रबंध करने और महाजनी पर नियंत्रण करने का अधिकार है।
11. ग्राम सभा को सामाजिक क्षेत्र में काम करने वाली संस्थाओं और व्यक्तियों पर नियंत्रण करने का अधिकार है।

धरातल पर चुनौतियां

केन्द्रीय विस्तार अधिनियम (पेसा) 1996 में पारित हुआ। अधिनियम में

यह स्पष्ट था कि वे सभी कानून जो विस्तार अधिनियम से संगति नहीं रखते हैं वे एक वर्ष बाद स्वतः ही निरस्त हो जाएंगे। अर्थात् 1997 तक यदि पंचायती राज कानून में संशोधन नहीं किये गये तो उसके बाद अनुसूचित क्षेत्रों में ये कानून लागू नहीं हो पाएंगे। इस गंभीर निर्देश के बाद भी राज्यों ने अपने पंचायती राज कानून में संशोधन को लेकर तत्परता नहीं दिखाई। 8 सितम्बर, 1997 को नई दिल्ली में राज्यों के पंचायती राज मंत्रियों और आदिवासी कल्याण मंत्रियों की बैठक में राजस्थान पंचायती राज सचिव ने कहा कि मौजूदा राजस्थान पंचायती राज अधिनियम 1994 में किसी प्रकार के संशोधन की आवश्यकता नहीं है क्योंकि राजस्थान के आदिवासियों ने किसी प्रकार का असंतोष या आक्रोश जाहिर नहीं किया है। यह भी कहा गया कि चूंकि ये एक जानी हुई बात है कि 5 फीसद ग्राम सभा सदस्य ही ग्राम सभा में हाजिर होते हैं इसलिए उनको कम से कम दो–तीन साल तक विस्तार अधिनियम अंतर्गत अधिकार नहीं दिये जाने चाहिए। जबकि वास्तविकता ये थी कि राजस्थान पंचायती राज अधिनियम 1994 के प्रावधानों की वजह से ही ग्राम सभा में उपस्थिति कम होती थी और इसलिए उसमें सुधारों की नितांत आवश्यकता थी।

कालांतर में कई नौकरशाही और सत्ताधारी समूहों के विरोधों के बावजूद आदिवासी संगठनों व अन्य जन संगठनों तथा गैर सरकारी संस्थाओं के आंदोलनों के कारण अनुसूचित क्षेत्रों वाले राज्यों के पंचायती राज अधिनियम में पेसा के सुसंगत संशोधन किये जा सके। इसके बाद धरातल पर पेसा कानून को लागू करवाने के लिए प्रयासों और संघर्षों का एक नया अध्याय शुरू हुआ। राजस्थान के डुंगरपुर जिले का वागड़ मजदूर किसान संगठन भी आरंभ से ही इसमें शामिल रहा।

अनुसूचित क्षेत्रों में पेसा कानून लागू करवाने के मार्ग में एक बड़ी चुनौती है वार्ड सभाओं का गठन तथा वार्ड सदस्यों का चुनाव। यह भी समझना जरूरी है कि 73वें संविधान संशोधन के तहत जब सरकार आबादी के आधार पर किसी गांव का सीमांकन करती है तब वह आम तौर पर सामुदायिक बस्तियों को तोड़कर उनको अन्य समुदायों के साथ मिलाकर एक ग्राम सभा में रहने के लिए मजबूर करती है। इस तरह सामाजिक ताना–बाना टूट जाता है और कृत्रिम तौर पर बनी ग्राम सभाओं में समुदायों के बीच तनाव पनपता है। ऐसे में पेसा को अगर जमीनी स्तर पर उतारना है तो यह मौलिक शर्त है कि अनुसूचित क्षेत्रों में

1. ग्राम सभा का सीमांकन आदिवासी गांव समाज के ताने–बाने के अनुरूप हो
2. ग्राम सभा को वार्ड सभाओं में नहीं बांटा जाय
3. जिस स्तर पर पारम्परिक आदिवासी प्रमुख मौजूद हैं उस स्तर पर वे ही पंचायत प्रतिनिधि बनाएं जाएं और उस स्तर पर मुखिया या वार्ड सदस्य का चुनाव न हो।

पेसा में ग्राम सभा की परिभाषा आबादी पर आधारित नहीं है। आदिवासी समुदाय अपनी परम्परागत पद्धतियों के अनुसार अपने गांव की सीमा और ग्राम सभा की घोषणा कर सकते हैं।

पेसा यह कहता है कि प्रत्येक गांव में वैसे एक या कई टोले होंगे जिन्हें समुदाय खुद एक गांव मानता हो और जहां वह रीति–रिवाजों तथा परम्पराओं के अनुसार अपने मामलों का प्रबन्धन करता हो। पेसा का उल्लंघन करते हुए झारखण्ड में 2010 के पंचायत चुनाव में आदिवासी ग्राम समाज को तोड़ते हुए वार्ड सदस्यों और मुखिया का चुनाव कराया गया। नतीजा ये हुआ कि अनुसूचित क्षेत्र के लगभग हर गांव में मानकी, मुंडा, पहान आदि से इतर वार्ड सदस्य और मुखिया चुने गए। ग्राम सभा का क्रियाकलाप पेसा की परिकल्पना के आस–पास भी नहीं फटक सका और विकास कार्य बाधित रहा। झारखण्ड में ग्राम स्वराज अभियान ने इस मुद्दे पर जनजागृति करते हुए पारम्परिक आदिवासी प्रमुखों को एकजुट किया और चयनित पंचायत प्रतिनिधियों के साथ उनका सामंजस्य बिठाने का प्रयोग किया। उनके इस प्रयास को आम लोगों के साथ–साथ प्रशासन ने भी समझा और तरजीह दी। एक कदम आगे बढ़े हुए अनगड़ा प्रखंड में गांव समाज ने पेसा के अनुरूप टोला स्तरीय ग्राम सभाएं स्थापित कीं। बाद के वर्षों में उन्नयन और सफलता के कई आयामों को पार करने के बाद सबसे बड़ी जीत तब हुई जब 2015 के पंचायत चुनाव में झारखण्ड सरकार ने पेसा के अनुरूप पारम्परिक आदिवासी प्रमुख को मान्यता देते हुए वार्ड सदस्यों का चुनाव नहीं करवाया।

उपसंहार

पेसा में ग्राम सभा को बहुत से अधिकार दिये गये हैं पर ग्राम सभा को सशक्त बनते हुए अपने अधिकारों को वास्तविक तौर पर हासिल करना होगा। कुछ कमजोरियों–जिनमें ग्राम सभा की हैसियत सिर्फ सलाहकार की है– को कानून और नीति परिवर्तन से दूर करना होगा। साथ ही यह भी अनिवार्य है कि ग्राम सभा तथा न्याय पंचायत की पितृसत्तातमक प्रकृति को आदिवासी समाज के अंदर से परिवर्तित किया जाय। आदिवासी महिला संगठनों के ऐसे कामों को बाहरी सहयोग की भी आवश्यकता है। डायन प्रथा और महिलाओं के भूमि अधिकार जैसे सवाल पेसा की अंतर्निहित चुनौतियों को स्वीकार करते है जिनका जवाब खुद आदिवासी समाज को ढूंढना है। मानवाधिकारों का हनन न हो और आदिवासी समाज की सामुदायिकता भी बनी रहे–ऐसे उपाय करने होंगे। ग्राम सभाओं में विमर्श चले।

कुल मिलाकर, विस्तार अधिनियम एक महत्वपूर्ण कानून है और यह वादा करता है कि लोगों को अपने मामलों का प्रबंधन करने के लिए मूलतः ग्राम सभा के माध्यम से भागीदारी का पूरा मौका मिलेगा। अब यह लोगों पर निर्भर करता है कि वे राज्य पर कितना दवाब डाल पाते हैं और कानूनों को सही रूप देने के लिए कितना मजबूर करते हैं ताकि वे अपने जनतांत्रिक अधिकारों का प्रयोग कर सकें।

बाधा

बेगम के बादशाह !

'एमपी' मतलब 'मुखिया पति', महिला मुखियों के पतियों का आधिकारिक नाम। ज्यादातर महिला प्रतिनिधि अपने घर के पुरुषों के लिए रबड़ स्टाम्प भर हैं। फिर चाहे वो पति हो, बेटा या फिर पिता, असल राज–काज तो वे ही चलाते हैं।

सारिका मल्होत्रा

एक बिल्कुल नई प्लास्टर की हुई दीवार पर लगे नेमप्लेट पर लिखा है 'कार्यालय, महमूदा खातून, मुखिया, वैशाली पंचायत'। दीवार से लगे कमरे में दो लोग बहुत देर से किसी का इंतजार कर रहे हैं कि तभी वहां एक 40 के करीब की उम्र का व्यक्ति हाजिर होता है। झकझक सफेद कुर्ता पायजामा और कैनवस के जूते पहने वह व्यक्ति इंतजार कर रहे लोगों से मुखातिब होता है और उनकी फरियाद सुनता है। फरियादी उसे 'मुखिया जी' कहकर संबोधित करते हैं और मुख्यमंत्री कन्या विवाह योजना के तहत मदद करने की गुहार लगाते हैं। तथाकथित 'मुखिया जी' उन्हें आश्वासन देते हैं कि उनकी फाइल को प्रखंड कार्यालय में प्रेषित कर दिया गया है। दरअसल 'मुखिया जी' वास्तविक मुखिया महमूदा खातून के पति हैं जो मुखिया पति की हैसियत से लोगों की फरियाद सुनते हैं और उस पर काम करने का आश्वासन भी देते हैं। फरियादियों की उनसे यह सातवीं मुलाकात थी लेकिन फिर भी वे बड़े आश्वस्त होकर लौट गए। 'मुखिया जी' ने अपना परिचय बड़े गर्व के साथ कराया 'एम.डी. कलामुद्दीन, वैशाली अध्यक्ष, एमपी'। 'एमपी' मतलब 'मुखिया पति', महिला मुखियों के पतियों का आधिकारिक नाम। हालांकि पूरे परिदृश्य में वैशाली की मुखिया महमूदा खातून कहीं नहीं दिखाई देतीं और जब उनके बारे में पूछा जाता है तो मुखिया पति कहते हैं कि वे घर पर आराम कर रही हैं। वे कहते हैं ''हमारा काम तो सुबह पांच बजे से रात के नौ बजे तक चलता रहता है। सब चीज के लिए उनको तो डिस्टर्ब नहीं कर सकते। कुछ जरूरी होता है तो जाकर साइन करवा लेते हैं।'' लेकिन इसके बावजूद जब दबाव डाला जाता है तो मुखिया जी घर से बाहर निकलती हैं और ये पल उन कुछ पलों में से है जब गांव वालों को उनकी वास्तविक मुखिया के दर्शन होते हैं।

बिहार का यह अकेला ऐसा मामला नहीं है। वैशाली के कई पंचायतों में यही हाल देखने को मिला। सलेमपुर पंचायत की मुखिया हैं नीलम देवी। उनके घर के बरामदे में कुछ लोग उनसे मिलने के लिए बैठे हैं और इस दौरान चाय के कई दौर भी चल चुके हैं। ग्रामीण बताते हैं कि एक औरत बिना घर के मर्द के बाहर नहीं आ सकती। करीब 50 मिनट के बाद एक बाइक दरवाजे पर रुकती है और उसपर सवार व्यक्ति को लोग मुखिया जी कहकर घेर लेते हैं। उसके वहां आने के कुछ देर के बाद ही घर के अंदर से मुखिया नीलम देवी भी बाहर आ जाती हैं। कहती हैं ''हम इसलिए बाहर नहीं आ रहे थे क्योंकि सब काम तो ये ही करते हैं, तो सब जानकारी इन्हीं को है।'' नीलम देवी के पति रामकृष्ण सिंह जो पेशे से ग्रामीण चिकित्सक हैं, कहते हैं '' मेरा पूरा दिन तो गांव वालों की समस्या सुनने में ही निकल जाता है। इतने लोग आते हैं कि मैडम का पूरा दिन चाय बनाने में निकल जाता है। घर के काम और बच्चों के लिए भी समय मुश्किल से मिलता है।'' बकौल सिंह '' मैडम अथॉरिटी हैं, हम तो केवल फॉरमैलिटी निभाते हैं।'' हालांकि मैडम ये बताती हैं कि 2011 में मुखिया बनने के बाद से बीडीओ, डीएम और डीडीसी के साथ वे केवल दो बैठकों में ही शामिल हुई हैं।

नीलम देवी और महमूदा खातून केवल बानगी भर हैं पंचायत चुनावों में 50 फीसद आरक्षण देने वाले राज्य की महिला मुखिया, सरपंच और प्रमुखों के हाल की। ज्यादातर महिला प्रतिनिधि अपने घर के पुरुषों के लिए रबड़ स्टाम्प भर हैं। फिर चाहे वो पति हो, बेटा या फिर पिता, असल राज–काज तो वे ही चलाते हैं। अचंभा और अफसोस तब होता है जब गांव वालों के साथ–साथ सरकारी अधिकारी भी महिला मुखिया और जनप्रतिनिधियों के बजाय उनके पति या घर के दूसरे मर्दों को आधिकारिक प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। वैशाली के प्रखंड कार्यालय में मौजूद नवनिर्वाचित सरपंच और मुखियों की संपर्क सूची में महिला जनप्रतिनिधियों के कॉलम में उनके फोन नंबर के स्थान पर उनके पतियों और पिता या बेटों के फोन नंबर दर्ज हैं। वास्तव में तो कई बीडीओ अपने क्षेत्र की महिला मुखियों को पहचानते भी नहीं हैं। सभी अधिकारी मुखिया पतियों के ही संपर्क में रहते हैं।

इस जटिल समस्या से राज्य सरकार भी पूरी तरह अवगत है। पंचायती राज विभाग के प्रधान सचिव शशि शेखर शर्मा मानते हैं कि यह समस्या केवल बिहार की ही नहीं है बल्कि झारखंड, राजस्थान और मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में भी कमोबेश यही स्थिति है। यह एक जटिल स्थिति है और इसकी जड़ हमारी पुरातन पुरुषपंथी सोच में छिपी है। वे कहते हैं कि गरीबी और अशिक्षा में बढ़ीं महिलाओं के आत्मविश्वास को जगाने के लिए उन्हें ज्यादा से ज्यादा प्रशिक्षण दिया जा रहा है। दरअसल पिछले कुछ वर्षों में पंचायती राज व्यवस्था में कई आमूलचूल परिवर्तन आए हैं। विकास और वित्तीय मामलों का पूरा

बाधा

अधिकार मुखियों को दे दिया गया है और वे मनरेगा तथा इंदिरा आवास से लेकर सड़क बनवाने तक के फैसले खुद लेने लगे हैं। महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान किये जाने के बाद से वे बड़ी संख्या में चुनकर आने लगी हैं। ऐसे में जब वे मुखिया बनती हैं तो लोगों की उनसे एकाएक अपेक्षा बढ़ जाती है और वे दूसरे दिन से ही उनसे विकास के फैसले लेने की उम्मीद करने लगते हैं। चूंकि महिलाओं के पास व्यावहारिक ज्ञान नहीं होता और वे कई तकनीकी बातों से वाकिफ नहीं होतीं इसलिए इस परिस्थिति में उनके लिए अपने घर के पुरुषों से अधिक विश्वसनीय कोई नहीं होता और वे उन पर निर्भर हो जाती हैं।

हालांकि गांव वाले इसे केवल प्रशासनिक दक्षता से जुड़ा मामला नहीं मानते। एक ग्रामीण प्रमोद कुमार सिंह कहते हैं कि ज्यादातर महिला प्रतिनिधियों को चुनाव प्रचार के समय भी घर से बाहर निकलने की अनुमति नहीं होती क्योंकि इससे उनके घर की 'प्रतिष्ठा' पर आंच आती है। उनका काम केवल परचा भरने और वोट देने भर का होता है। उन्हें तो यह भी पता नहीं होता कि परचा कहां भरा जाता है और इसके लिए किन कागजातों की आवश्यकता होती है। प्रमोद कुमार कहते हैं कि महिला उम्मीदवार केवल नामांकन पत्र पर हस्ताक्षर कर देती हैं और उनके लिए राजनीतिक गठजोड़ से लेकर फैसले लेने तक के सारे काम उनके पुरुष प्रतिनिधि करते हैं।

ये सच है कि पंचायत चुनावों में महिलाओं के लिए आरक्षण का प्रावधान महिलाओं को घरों से बाहर निकालने और उनका सशक्तीकरण करने के लिए किया गया था लेकिन ग्रामीण मानते हैं कि इससे महिलाओं का तो नहीं लेकिन उनके घर के मर्दों का सशक्तीकरण जरूर हो गया। महिलाओं के लिए स्वतंत्र होकर चुनाव लड़ने तथा डमी की छवि से बाहर निकलने में अभी भी कई साल लगेंगे। वैशाली के निवासी अनिल कुमार भगत कहते हैं कि दरअसल हर पंचायत में कुछ परिवार या लोग विशेष राजनीतिक महत्वाकांक्षा तथा पहुंच वाले होते हैं और अमूमन हर बार वे ही चुनाव मैदान में उतरते और पैसा लगाते हैं। जब बात आरक्षण की होती है तब भी मैदान में या तो उनके घर की महिलाएं उतरती हैं या फिर उनकी कोई उम्मीदवार। ये महिलाएं उनकी राजनीतिक महत्वाकांक्षा को पूरा करने का जरिया होती हैं। कलामुद्दीन के मामले में यह बात सही साबित होती है। 2010 में बसपा की टिकट पर वे बिहार विधानसभा का चुनाव हार गए थे तो 2011 में उन्होंने अपनी पत्नी को वैशाली के मुखिया चुनाव में सामने खड़ा कर दिया, क्योंकि यह सीट महिलाओं के लिए सुरक्षित थी। लगभग यही स्थिति नीलम देवी के मामले में भी है। वे एक प्रभावशाली परिवार से हैं और उन्होंने सलेमपुर से पिछले पंचायत चुनाव में भी सरपंच के पद के लिए चुनाव लड़ा था। ब्लॉक ऑफिस की सूची में देवी के पति के चाचा का मोबाइल नंबर भी मिल जाता है।

मुखिया की बढ़ती ताकत और पहुंच ने पिछले वर्षों की तुलना में इसे अधिक महत्वपूर्ण बना दिया है। मुखिया बन जाने से न केवल योजनाओं को बनाने और उन्हें लागू कराने का अधिकार मिल जाता है बल्कि इससे सार्वजनिक जीवन में आगे बढ़ने और पहचान बनाने का सुनहरा मौका भी प्राप्त हो जाता है।

(यह आलेख बिजनेसटुडे.इन में पूर्व प्रकाशित आलेख का हिंदी रूपांतरण है)

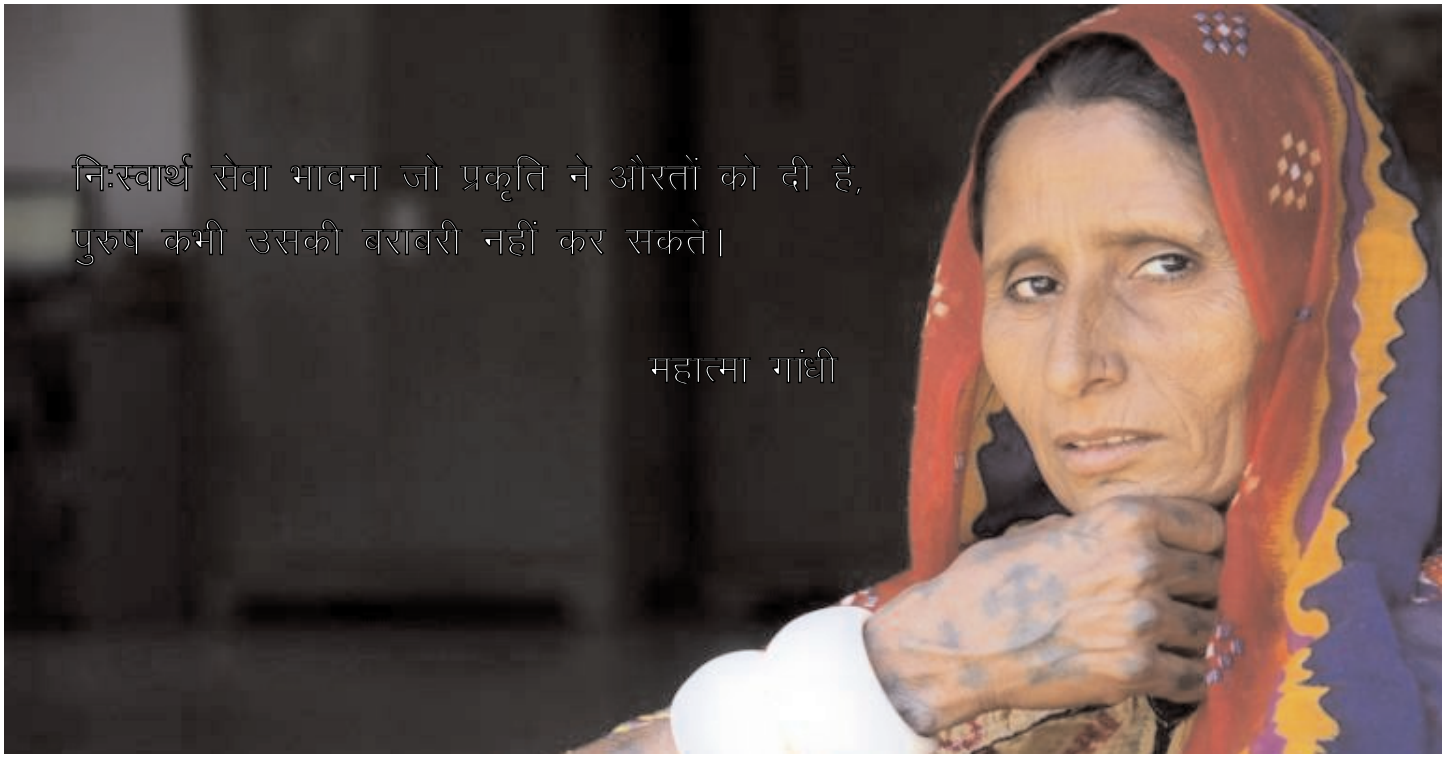

बिहार पंचायती राज में महिला नेतृत्व

बदलाव की पहलकदमियां

वार्ड सभा का प्रावधान करना ग्राम पंचायत की महिला जनप्रतिनिधियों की बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जानी चाहिए। विकेन्द्रीकरण की सबसे निचली इकाई से विकास को देखने–परखने का रास्ता वार्ड सभा ने खोला है। निर्वाचित जनप्रतिनिधि, विशेष तौर पर महिलाएं वार्ड सभा को जीवित करने के लिए बहुत अधिक उत्साहित हैं। महिला नेतृत्व के नजरिये से अगर देखा जाए तो वार्ड सभा के माध्यम से ही महिलाएं अपने नेतृत्व को समुदाय व समाज के सामने स्थापित कर पाएंगी।

बिहार पंचायती राज महिला जनप्रतिनिधियों की आधी हिस्सेदारी के साथ अपने तीसरे चरण में प्रवेश कर चुका है। जहां एक ओर वर्ष 2006 –2011 का कार्यकाल पंचायतों में महिलाओं की उपस्थिति को दर्ज कराने वाला रहा, वहीं वर्ष 2011– 2016 के कार्यकाल में यह उपस्थिति सक्रिय भागीदारी में तब्दील होती नजर आई। मई 2016 से शुरू हुए नए चक्र में निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधि अधिक प्रखरता एवं समझ के साथ पंचायतों में चुन कर आई हैं।

सार्वजनिक क्षेत्रों में महिलाओं की उपस्थिति व निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी की दृष्टि से पंचायती राज की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है। बिहार के ग्राम पंचायतों की निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधियों ने घर से ब्लॉक कार्यालय तक स्थापित पितृसत्ता को प्रत्यक्षतः कई बार चुनौती देते हुए न सिर्फ अपने पद की जिम्मेदारियों को निभाया है बल्कि सामाज के दोहरे नजरिये को भी बदलने के लिए मजबूर कर दिया है। सामाजिक सुरक्षा पेंशन सुनिश्चित करने से लेकर विभिन्न सेवाओं की लगातार मॉनिटरिंग कर उन्हें सुधारने की कोशिश हो या फिर पानी, बिजली जैसे मसले, महिला जनप्रति. निधियों ने पूरी सूझ–बूझ व कार्यकुशलता का परिचय देते हुए विकास के कई काम किये हैं।

बिहार के पंचायती राज के इतिहास में दो मुख्य बातें हमेशा इबारत बन कर महिला नेतृत्व के नाम लिखी जाएंगी। हाल ही में पंचायत चुनाव में उम्मीदवारी के लिए शौचालय की अनिवार्यता को सरकार द्वारा वापस लिया जाना, एक बड़ी सफलता के रूप में देखा जा सकता है। वैसे इस प्रावधान के वापस लिए जाने का श्रेय कई राजनीतिक पार्टियां लेने लगी हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि जब पहली बार अगस्त 2015 को यह प्रावधान आया, या यूं कहें इससे करीब 2 साल पहले 2013 में पहली बार जब मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने ऐसे प्रावधान बनाने की नीयत रखी थी, तब से हटने के दिन तक सबसे ज्यादा आवाज बलुंद करने वाली ग्राम पंचायतों की महिला जनप्रतिनिधि थीं। महिला जनप्रतिनिधि कई मंच से सरकार तक इस प्रावधान के विरोध में अपनी बात पहुंचातीं रहीं। इसके लिए विभिन्न मंत्रियों, राजने. ताओं, अधिकारियों से लेकर मुख्यमंत्री तक से लिखित में अपना विरोध प्रकट करती रहीं और सरकार को पुनर्विचार करने के लिए बाध्य कर दिया। बिहार विधान सभा चुनाव के ठीक पहले विधान सभा के अंतिम सत्र में जब यह विधेयक पारित हुआ तब विरोध का एक स्वर भी नहीं उठा। किन्तु पारित होने के दूसरे दिन, 6 अगस्त 2015 को पटना के आईएमए हॉल में जमा होकर ग्राम पंचायतों की महिला जनप्रतिनिधियों ने मीडिया के समक्ष अपना विरोध व रोष प्रकट किया था। महिला जनप्रतिनिधियों की चिन्ता जहां अपनी उम्मीदवारी को लेकर थी वहीं वे भूमिहिनों व वंचितों के पंचायत में भागीदारी न होने की वजह से भी परेशान थीं।

शाहिना परवीन

(प्रोग्राम ऑफीसर, हंगर प्रोजेक्ट, बिहार। राज्य में पंचायती राज व्यवस्था पर वर्ष 2006 से काम कर रही हैं।)

हां, यहां यह कहना भी गलत नहीं होगा कि महिला जनप्रतिनिधि स्वच्छता की विरोधी नहीं है। तभी तो जीत कर आने के बाद जहां सरकार अपने स्वच्छता पर काम करने के निश्चय को बार–बार दोहरा रही है, वहीं ग्राम पंचायतों की महिला जनप्रतिनिधि ही इस निश्चय को पूरा करने की तैयारी में जुटी हुई हैं। किन्तु सरकारी महकमे द्वारा शौचालय निर्माण एवं पूर्ण स्वच्छता के लिए कोई ठोस व आवश्यक रोड मैप नहीं होने के कारण ग्राम पंचायतें असमंजस की स्थिति में खड़ी है।

इसी प्रकार यदि हम पूरे पंचायती राज के गांवों/पंचायतों में वास्तविक स्थिति को देखें, तो सरकार के तमाम वादे व इरादे के बाद भी पंचायत जनभागीदारी से कोसों दूर है। ग्रामसभा का धरातल पर न होना आज भी सबसे बड़ी समस्या है। साथ ही किसी भी पंचायत के लिए वार्ड सदस्य सबसे अनिवार्य एवं बुनियादी कड़ी हैं, जिन्हें लगातार नजर. अंदाज किया जाता है। किसी भी वार्ड सदस्य को पंचायत के निर्णय में अपनी भूमिका व जवाबदेही समझने में पूरा टर्म खत्म हो जाता है और अधिसंख्य वार्ड सदस्यों में कार्यकाल खत्म होने के बाद भी इसकी समझ नहीं बन पाती है। इन्हीं समस्याओं को समझते हुए बिहार के कुछ जिलों की महिला जनप्रतिनिधियों, विशेष रूप से वार्ड सदस्यों ने अपने वार्ड में वार्ड सभा का आयोजन किया। यह सभा कोई समारोह या कार्यक्रम न होकर इनके कार्य का मुख्य हिस्सा थी। महिला वार्ड सदस्यों द्वारा अपने वार्ड की समस्याओं को समझना, विभिन्न सरकारी योजनाओं के लाभार्थियों की सूची बनाना, वार्ड के विकास के लिए योजना का निर्माण व प्रस्ताव पारित करने जैसे कामों को बखूबी किया गया। किसी–किसी वार्ड सदस्य ने प्रत्येक माह में एक बार अनिवार्य रूप से तो कइयों ने आवश्यकतानुसार बार–बार भी बैठकें की। नतीजतन आस–पास के अन्य वार्ड के प्रतिनिधि भी इसके महत्व को जानने–समझने लगे। साथ ही वार्ड सभा की मांग भी लगातार राज्य सरकार से की जाने लगी। परिणामस्वरूप गत वर्ष 2015 में बिहार पंचायती राज (संशोधन) अधिनियम 2015 में वार्ड सभा को वैधानिक मान्यता दी गई। वार्ड सभा का प्रावधान करना ग्राम पंचायत की महिला जनप्रतिनिधियों की बहुत बड़ी उपलब्धि मानी जानी चाहिए। विकेन्द्रीकरण की सबसे निचली इकाई से विकास को देखने–परखने का रास्ता वार्ड सभा ने खोला है। इस नए कार्यकाल में निर्वाचित जनप्रतिनिधि विशेष तौर पर महिलाएं वार्ड सभा को करने के लिए बहुत अधिक उत्साहित हैं। महिला नेतृत्व के नजरिये से अगर देखा जाए तो वार्ड सभा के माध्यम से ही महिलाएं अपने नेतृत्व को समुदाय व समाज के सामने स्थापित कर पाएंगी।

पंचायतों में महिला नेतृत्व के सफर में सबसे बड़ी बाधा आर्थिक विपन्नता है। अगर पिछले 2 कार्यकाल के आंकड़ें को देखें तो निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधियों में 80 फीसदी गरीबी में जी रही है। अधिसंख्यक निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधि मजदूर वर्ग से आती हैं। अगर उन्हें पंचायत के काम से ब्लॉक या पंचायत की बैठक में जाना होता है, तो उनकी उस दिन की मजदूरी मारी जाती है। नतीजतन कई बार उस महिला के साथ–साथ उनके बच्चे व घर के वृद्ध जन भूखे सोने को मजबूर होते हैं। सैद्धान्तिक रूप से तो राजनीति को पैसा कमाने या रोजगार का साधन नहीं माना जाता है लेकिन इस लोकतांत्रिक व्यवस्था में सारी हकमारी व कायदे–कानून निचले स्तर के जनप्रतिनिधियों और जनता पर लागू की जाती है। सांसद के वेतनमान या फिर विधायक के वेतन व अन्य भत्ते की बात पर सभी राजनीतिक पार्टी सारे विभेद भुला कर सर्वोच्च वेतन व सुख सुविधा लेती हैं। वहीं पंचायत प्रतिनिधियों के साथ एक गरीब के बच्चे को 'चीनी वाली लट्ठो' दिलाकर सरकार खुद को गर्वान्वित महसूस करती है। ज्ञात हो कि बिहार में पंचायत के वार्ड सदस्यों को पहले 100 रुपए (वर्ष 2007) फिर दोगुना यानि 200 रुपए (वर्ष 2013) और फिर विधान सभा चुनाव के वक्त 500 रुपए देना मंजूर किया गया। पहले यह बैठक भत्ता था, जिसे गत वर्ष प्रतिमाह मानदेय के रूप में निर्धारित किया गया। लबोलुआब यह कि वार्ड सदस्य को पंचायत के काम के एवज में मात्र 500 रुपए अर्थात् प्रतिदिन 16 रुपए दिये जाते है। क्या भूख और गरीबी का दंश झेल रही आधी आबादी निर्बाध रूप से पंचायत के नेतृत्व के बारे में सोच सकती हैं? यह सवाल मौजूं हैं। पितृसत्तात्मक परिवार में आज भी महिलाएं अर्जक के रूप में घर से बाहर एक निर्धारित ढांचे व तय नैतिक पैमाने के रूप में स्वीकार्य है। ऐसे में निर्वाचित महिलाओं से भी धन अर्जन की लालसा व दबाव को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

पंचायत चुनाव 2016 में निर्वाचित होकर आई महिला जनप्रतिनिधियों के समक्ष एक बड़ी चुनौती सरकारी कर्मियों व अधिकारियों की तरफ से आती है। महिलाओं की नेतृत्व भागीदारी के साथ पंचायती राज का एक दशक पूरा हो चूका हैं किन्तु पंचायत सचिव से लेकर प्रखंडस्तरीय अधिकारियों तक की न तो सोच बदली है और न ही नीयत। उन्हें आज भी मुखिया पति के साथ योजनाओं पर विचार–विमर्श करने से लेकर निर्णय लेने तक की मानो आधिकारिक ड्यूटी मिली हो। इन सरकारी कर्मियों के लिए पदधारक महिला मुखिया, पंचायत समिति या वार्ड सदस्य अभी भी आम महिलाएं हैं, जिनसे यह सीधे तौर पर मोबाइल पर न तो बात करते हैं न ही बैठक की सूचना सीधे इन्हें दी जाती है। महिला जनप्रतिनिधियों को दरकिनार कर अधिकारी व कर्मचारी भ्रष्टाचार को पोषित कर रहे हैं। नई पारी की शुरुआत करने वाली महिलाओं के लिए नौकरशाही के मकड़जाल को तोड़ना व विकास का काम करना एक बड़ी चुनौती रहेगी।

दूसरा सबसे अहम सवाल है, पंचायतों को मिले अधिकार को अधिक प्रखर बनाने के बजाए अन्य समानांतर व्यवस्था खड़ी करना। उदाहरण के तौर पर विद्यालय में शिक्षकों की उपस्थिति या मध्याह्न भोजन की निगरानी एवं रिपोर्टिंग की जवाबदेही जीविका दीदी को दिया जाना। जब बिहार पंचायती राज व्यवस्था में निगरानी समिति का स्पष्ट प्रावधान है, तो जीविका की सदस्यों को अलग से देखे जाने का क्या औचित्य है? विद्यालय शिक्षा समिति की भूमिकाएं फिर क्या होगी? निर्वाचित जनप्रतिनिधि की वास्तविक भूमिका एवं अधिकार क्या होंगे? क्या ग्राम सभा पर हमारा विश्वास उठ चुका है? ऐसे कई सवाल हैं, जो वास्तविक पंचायती राज के लिए आवश्यक हैं। शायद बिहार सरकार केरल के कुटम्ब श्री से प्रभावित होकर ऐसे निर्णय ले रही हैं। लेकिन सरकार को केरल के सफल पंचायती राज के मूल मंत्र को देखना चाहिए। क्योंकि केरल के पंचायती राज व्यवस्था की सबसे बड़ी शक्ति उनके कानून में सभी विभागों को पंचायतों को हस्तानांतरित किए गए हैं। ऐसे में विकास की योजनाओं के क्रियान्वयन से लेकर पंचायतों

की स्वंय की आवश्यकताओं पर काम करने में कोई दिक्कत नहीं आती है। लेकिन केरल में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी के बावजूद महिलाओं के साथ हिंसा, दहेज जैसे मसले पर पंचायतों की सजग भूमिका न होना कहीं न कहीं विकास की परिभाषा को कुरेदने की आवश्यकता महसूस कराता है।

बहरहाल, किसी भी व्यवस्था का ठीक से चल पाने का यह मतलब नहीं है कि उस पर काम किए जाने के बजाए, नई व्यवस्था खड़ी कर दर जाए। तब जबकि बिहार गांधी जी के चम्पारण सत्याग्रह का शताब्दी वर्ष मना रहा हो। क्या बिहार के लिए यह बेहतर नहीं हो कि हम समानांतर व्यवस्था को खड़ी करने के बजाए नागरिकों की भूमिका व ग्राम सभा के रास्ते को सशक्त व सक्षम बनाएं। बिहार के पंचायतों की एक बड़ी ताकत यह है कि आज भी जमीनी स्तर पर निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधि राजनीतिक पार्टी के आधार पर वृद्धा पेंशन, विधवा पेंशन या अन्य विकास की योजनाओं को नहीं देखती हैं। सामुदायिक विकास की इस भावना के आधार पर यदि पंचायती राज व्यवस्था की 'किन्तु व परन्तु' को दूर किया जाए, तभी पंचायती राज व्यवस्था सुदृढ़ हो पाएगी।

बिहार में महिला नेतृत्व एक नए कार्यकाल के साथ तमाम चुनौतीयों के बावजूद अपने पद की भूमिका के निवार्हण के लिए तत्पर हैं। पिछले एक दशक ने निःसंदेह महिला नेतृत्व के प्रति कई धारणाओं को बदला है। मजबूरी में सत्ता में लाने की कवायद के आगे स्वयं निर्वाचित महिला जनप्रतिनिधि अपने पद को महसूस करने लगी हैं और उसके इस्तेमाल के लिए आतुर हैं। जरूरत है कि महिला नेतृत्व के संवर्द्धन में समाज एवं व्यवस्था दोनों ही सकारात्मक व सहयोगात्मक भूमिका निभाएं।

60 साल की मुखिया ने पंचायत को खुले में शौचमुक्त किया

बिहार में स्वच्छता मिशन शुरू होने के बाद रामपुर पहली पंचायत बना जिसने खुद को खुले में शौचालय मुक्त होने की घोषणा की। 2819 घरों वाले रामपुर ने चार महीनों के भीतर यह उपलब्धि हासिल कर ली और इसके पीछे सबसे बड़ी प्रेरणा बनीं यहां की मुखिया निर्मला देवी। 60 वर्ष की निर्मला देवी ने जो उत्साह और तत्परता दिखाई वह नौजवानों के लिए भी नजीर बन गई।निर्मला देवी ने समुदाय आधारित पूर्ण स्वच्छता अभियान का भरपूर इस्तेमाल किया और उनकी प्रेरणा से गांव के लोगों ने भी हिम्मत दिखाई और खुले में शौच करने वालों का बहिष्कार किया। गांव में चाय की दुकान करने वाले अनिल शाह ने उन लोगों को चाय पिलानी बंद कर दी जो खुले में शौच करते थे। ऐसा करने से अनिल को नुकसान तो हुआ लेकिन उन्होंने गांव में स्वच्छता को ज्यादा तरजीह दी और अपने फैसले पर अड़े रहे। ऐसा ही जज्बा गांव के पोलियोग्रस्त धीरज कुमार ने भी दिखाया और लोगों को खुले में शौच करने से रोकने की कसम उठा ली। धीरज जानते थे कि खुले में शौच करने से पोलियो के वायरस फैलते हैं और वे नहीं चाहते थे कि जो दर्द वे झेल रहे हैं उसे किसी और को भी झेलना पड़े। धीरज और अनिल जैसे लोगों को प्रेरित किया गांव की मुखिया निर्मला देवी ने और उन्होंने 25 दिनों के भीतर गांव में 1100 से ज्यादा शौचालय बनवा कर महज चार महीनों में खुले में शौच मुक्त गांव का तमगा अपने नाम कर लिया। इस काम में निर्मला देवी को जिलाधिकारी और सीएलटीएस के जिला समन्वयक का भी भरपूर साथ मिला। समुदाय के लोगों के बीच ज्यादा से ज्यादा समय देकर तथा एक–एक गांव वाले की काउंसिलिंग के जरिये उन्होंने समझाया कि खुले में शौच के क्या–क्या नुकसान हैं। केवल शौचालय बन जाने से कुछ नहीं होता बल्कि उनका इस्तेमाल करना भी जरूरी है। अधिकारियों की पूरी टीम ने पंचायत में तब तक कैंप किया जब तक कि सारे ग्रामीण खुले में शौच न करने के लिए राजी नहीं हो गए। वे उस समय खेतों में पहुंच जाते जब लोग शौच के लिए निकलते। हालांकि कुछ लोगों को समझाना वाकई मुश्किल रहा फिर भी मुखिया और अधिकारियों की पूरी टीम के हौसले के आगे वे टिक नहीं पाए। सबके साझा प्रयासों से आखिरकार 10 अगस्त 2015 को मुखिया निर्मला देवी ने पंचायत को खुले में शौचमुक्त घोषित कर दिया।

"लोगों की सोच को बदलना कठिन था लेकिन मैं भी अपने इरादे पर अटल थी। मैंने देखा था कि लड़कियां और औरतें कितने असुरक्षित रास्तों से रोज गुजरती थीं। उनके चारों ओर सांपों और चोरों का डर मंडराता रहता था। मैंने समझ लिया कि अगर मुझे गांव में बदलाव लाना है तो शुरुआत अपने घर से करनी होगी। इसके लिए सबसे पहले मैंने अपने घर में शौचालय बनवाकर इस्तेमाल करना शुरू किया और फिर लोगों को प्रेरित किया।"

नीति

दो बच्चों की नीति : सामाजिक प्रभाव

ऐसी महिलाएं जिनकी घोषणा से पहले सिर्फ एक संतान थी उनमें घोषणा के बाद दूसरी संतान होने की संभावना क्षीण हो गई। अब अगर एक संतान वाले परिवारों को भविष्य में चुनाव लड़ना है तो ग्रेस अवधि समाप्त हो जाने के बाद उनके लिए तीसरी संतान होने की कोई संभावना नहीं बच जाती। ऐसे में वे दूसरे बच्चे के लिंग को लेकर सतर्क हो जाते हैं और जाहिर तौर पर उनके लिए बेटे की चाहत बढ़ जाती है।

एस. अनुकृति
बोस्टन कॉलेज

अभिषेक चक्रवर्ती
यूनिवर्सिटी ऑफ एसेक्स

कुछ राज्यों में स्थानीय चुनावों में उन लोगों के लड़ने पर रोक लगा दी गई है जिनके दो से अधिक बच्चे हैं। इस अध्ययन में पाया गया है कि इस कानून का संबंधित राज्यों में आम लोगों की प्रजनन क्षमता पर असर पड़ा है और इसने उंची जाति में लिंग अनुपात को भी बुरी तरह प्रभावित किया है। यह सुझाव देता है कि भारतीयों में स्थानीय नेतृत्व की बेहतरीन क्षमता है और राजनीति में उनके प्रवेश को बाधित करने वाली नीतियों का सामाजिक परिवर्तन पर प्रभाव पड़ सकता है। भारत दुनिया में दूसरी सबसे बड़ी आबादी वाला देश है और 1.2 बिलियन की संख्या के साथ यह दुनिया का तीसरा सबसे ज्यादा गरीबों वाला देश भी है। ऐसे में प्रजनन क्षमता को कम करना यहां के नीति निर्धारकों के लिए पहली प्राथमिकता है।

इस सोच का ध्यान में रखते हुए 1992 में राजस्थान सहित 11 राज्यों ने अपने यहां दो बच्चों की नीति को लागू किया जिसके तहत दो से ज्यादा बच्चों वाले लोगों के पंचायत चुनाव में भाग लेने पर रोक लगा दी गई। चार राज्यों हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ ने 2005–06 में इस कानून को खत्म कर दिया जबकि सात राज्यों राजस्थान, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र, उत्तराखंड, गुजरात और बिहार ने इसे जारी रखा। इन राज्यों ने उम्मीदवारों को एक साल का अतिरिक्त समय भी दिया लेकिन उसके बाद भी अगर उनके दो से अधिक बच्चे हुए तो उनकी उम्मीदवारी पर खतरा हो सकता था। सातों राज्यों में 2004 में त्रिस्तरीय पंचायती व्यवस्था के तहत 91,2,597 सीटें थीं। मान लें कि हर सीट पर तीन उम्मीदवार थे और राज्यों की करीब 30 फीसद आबादी प्रजनन की आयु में थी यानी करीब 102 मिलियन, तो इस तरह इन राज्यों की 2.7 फीसद प्रजनन क्षमता वाली आबादी इस नीति से सीधे–सीधे प्रभावित हुई। ऐसे में इसके परिणाम नीति निर्धारकों की उम्मीद के बहुत करीब थे।

नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे (NFHS) और जिलास्तरीय हाउसहोल्ड सर्वे (DLHS) के आंकड़ों का इस्तेमाल करते हुए हमने 511,541 औरतों तथा 1,261,711 प्रसव का अध्ययन किया जो सात उन राज्यों से लिए गए थे जहां यह कानून लागू किया गया था और 11 उन राज्यों से भी लिये गये थे जहां यह कानून 1973 से 2006 के बीच कभी लागू नहीं किया गया था। हमने इस कानून के लागू होने के पहले और बाद दोनों प्रकार के राज्यों में महिलाओं के प्रजनन की दर का अध्ययन किया। हमने पाया कि जहां कानून लागू हुआ था वहां घोषणा होने के बाद पूर्व की तुलना में तीसरा बच्चा होने की संभावना 6.25 फीसद कम रही। हालांकि कानून लागू होने के बाद के सभी सालों में यह कमी एक समान नहीं रही। जो ग्रेस अवधि उन्हें दी गई थी उसमें दो से ज्यादा बच्चे होने की संभावना में 17.9 फीसद की तेजी आ गई थी जो बाद के वर्षों में घट गई। इससे पता चलता है कि लोग ग्रेस अवधि का इस्तेमाल अपने परिवार को बढ़ाने के लिए कर रहे हैं ताकि आगे भी

उनकी उम्मीदवारी बनी रहे। ऐसी महिलाएं जिनकी घोषणा से पहले सिर्फ एक संतान थी उनमें घोषणा के बाद दूसरी संतान होने की संभावना क्षीण हो गई। अब अगर एक संतान वाले परिवारों को भविष्य में चुनाव लड़ना है तो ग्रेस अवधि समाप्त हो जाने के बाद उनके लिए तीसरी संतान होने की कोई संभावना नहीं बच जाती। ऐसे में वे दूसरे बच्चे के लिंग को लेकर सतर्क हो जाते हैं और जाहिर तौर पर उनके लिए बेटे की चाहत बढ़ जाती है। हम यहां यह जानने की कोशिश करेंगे कि दो बच्चों की नीति के कारण भ्रूण के लिंग चयन पर कितना प्रभाव पड़ा है। ये एक तथ्य है कि भारत में पहले बच्चे का जन्म ऐसे ही बिना किसी विशेष चयन और पसंद के हो जाता है लेकिन दूसरे बच्चे के समय लड़के की चाहत बढ़ जाती है अगर पहला बच्चा लड़की हो। ऐसी चाहत उच्च वर्ग में ज्यादा है। हमने जाना कि कैसे दो बच्चों की नीति ने पहले बच्चे के आधार पर दूसरे बच्चे का लिंग निर्धारण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

हमने पाया कि नीति की घोषणा के बाद उंची जातियों के उन परिवारों में लड़का होने की दर 3.07 फीसद ज्यादा रही जिनमें पहले से बेटी थी। यानी की नीति के कारण ऐसे परिवारों में दूसरे बच्चे के समय बेटे की चाहत में चार गुना ज्यादा बढ़ोतरी देखी गई। वहीं दूसरी ओर उच्च जातियों के उन परिवारों में दूसरे बच्चे के समय लिंग को लेकर उतनी उत्सुकता नहीं पाई गई जिनमें पहले से बेटे थे। इस सबके विपरीत नीची जातियों में पहले बच्चे के लिंग का दूसरे बच्चे की पैदाइश पर कोई असर नहीं पाया गया। तो अध्ययन से यह जाहिर होता है कि दो बच्चों की नीति उंची जाति के लोगों को दूसरे बच्चे के जन्म के समय लिंग परीक्षण के लिए प्रोत्साहित करती है ताकि उन्हें कम से कम एक बेटा हो जाय और साथ ही साथ उनकी चुनाव लड़ने की पात्रता भी बनी रहे।

स्थानीय चुनावों में अपनी उपस्थिति दिखाने की चाहत ने प्रजनन दर को कम करने में जबर्दस्त भूमिका निभाई है और वो भी तेजी में क्योंकि लोग खुद चुनाव लड़ने के योग्य बने रहना चाहते है। हमारी समझ में ये ऐसा पहला उदाहरण होगा जब लोगों की राजनीतिक ताकत पर रोक लगाने की नीति ने इतने बड़े देश की जनसांख्यिकी को इस हद तक प्रभावित किया है। पहले के अध्ययनों के विपरीत हमारे नतीजे बताते हैं कि अपनी राजनीतिक ताकत को बरकरार रखने के लिए भारतीय किसी भी बदलाव को मानने के लिए तैयार रहते हैं। हम मानते हैं कि वे नीतियां जो स्थानीय राजनीतिक नेतृत्व को प्रोत्साहन देती हैं, सामाजिक बदलाव की वाहक हो सकती हैं। हालांकि दुर्भाग्य से लिंग अनुपात पर होने वाले बुरे प्रभाव ने यह भी साबित कर दिया है कि भारतीय नीति निर्माता आज भी लड़कियों के प्रति भेदभाव की भावना से मुक्त नहीं हो पाए हैं। ऐसे में आवश्यक है कि नीतियां बनाते समय जेंडर निष्पक्षता का ध्यान रखा जाय।

(यह आलेख आइडियाजफॉरइंडिया.इन में पूर्व प्रकाशित आलेख का हिंदी रूपांतरण है)

- बिहार और उत्तराखंड ने इस नीति को पंचायत चुनाव में नहीं अपनाया बल्कि केवल निगम चुनावों तक सीमित रखा है।
- 2001 की जनगणना के मुताबिक, राज्य में 20 से 39 वर्ष तक की आबादी करीब 30 से 35 फीसद के बीच है।
- आंकड़ों की अनुपलब्धता के कारण हम केवल सात राज्यों राजस्थान, हरियाणा, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र में हुए प्रभावों का ही आकलन कर सके।
- आंकड़ों की अनुपलब्धता के कारण नीति लागू न करने वाले अन्य राज्यों में गोवा और सातों पूर्वी राज्यों को छोड़कर सभी राज्य शामिल थे।
- अध्ययन में हमने एनएफएचएस के 2006 के आंकड़ों का इस्तेमाल किया है। इसमें उन महिलाओं को सैंपल के तौर पर लिया गया है जिनकी शादी सर्वे से करीब 20 वर्ष पहले हुई है। इस तरह 1973 सर्वे में इस्तेमाल किया गया आरंभिक वर्ष है।

विशेषज्ञ

पंचायत रहे कि जाए

ओम प्रकाश

(पंचायत मामलों के विशेषज्ञ)

पंचायत अब पुराण या इतिहास की बात नहीं बल्कि आज स्वशासन पर काम करने वाले किसी शोधकर्मी या विकास के काम में लगे विकासकर्मी के लिए एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है। देश विदेश की हजारों संस्थाओं के लाखों कर्मी पंचायत के विकास के लिए कृतसंकल्पित दिखते हैं। पर नतीजा अभी तक तो सिफर ही दिखता है। शोधकर्मी और विकासकर्मी पंचायत को ज्यादा से ज्यादा उत्तरदायी और पारदर्शी बनाना चाहते हैं। पूरे विश्व में प्रतिनिधित्व के प्रजातंत्र में लोगों की घटती आस्था ने सहभागी अभिशासन के बारे में सोचने पर मजबूर कर दिया है। यूरोप के कम्यून हो या मिस्र के नगर राज्य, स्थानीय स्वशासन की इकाई लगभग सभी सभ्यता या संस्कृति में किसी न किसी रूप में मौजूद रही है।

वैदिक काल से ही भारत में पंचायतों का अस्तित्व रहा है और इसके औचित्य को सबने स्वीकार किया। देश के लगभग हर भाग में भाईबंध, गण, परिषद, नाडु, ब्रह्मदेया और न जाने कितने ही नामों से पंचायतें प्रस्फुटित, पल्लवित और पुष्पित होती रही हैं। पंचायत शब्द में एक पुरबिया महक है। पूर्वांचल का पंचयती और कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद का पंच–परमेश्वर, दैनंदिन में मिल बैठकर लिये जाने वाले निर्णय का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। ऐसे ही पंचायतों को देखने के बाद 1832 में लार्ड मेटकॉफ ने ब्रिटिश पार्लियामेंटरी समिति को सौंपी अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि ''.....भारतीय गांव सम्प्रभु और स्वावलम्बी हैं, नतीजतन कितने ही आक्रमणकारी आये और गये, पर भारतीय गांव अक्षुण्ण बने रहे.....।'

परन्तु आज की पंचायतों के बारे में होने वाली चर्चा का विश्लेषण करने पर एक प्रश्न उठता है : पंचायत रहे कि जाय। पंचायतों को मिलने वाली शक्ति के हस्तांतरण या प्रतिनिधायन पर हो रही रस्साकशी, मनरेगा की योजना में पंचायत की भूमिका पर उठने वाले सवाल, त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्था के बीच तालमेल का अभाव और जिला योजना समिति की बैठक में विक. ासमद की राशि के बंदरबॉट के समाचार के बाद तो लगता है कि ऐसे पंचायत के होने से तो ना होना ही बेहतर है।

पर एक दूसरा पक्ष भी है जो मन को झकझोड़ता है। भारत में पंचायत कोई आयातित प्रशास. निक परम्परा या पद्धति नहीं है, जिसके कार्यकलाप को सीखने के लिए किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता हो। गांव समाज में आज भी कई ऐसे कार्य हैं जो गांव के लोग बिना किसी प्रकार के बाहरी मदद के कर लेते हैं। एक ही गांव में एक सड़क पर कुछ हजार घनफुट मिट्टी डालने के लिए चुने हुए पंचायत को मनरेगा के तहत एक तकनीकी और प्रशासनिक प्रकिया अपनानी होती है। मूल्यांकन पद्धति, उत्तरदायित्व का निरुपण, सहभागी अनुश्रवण, सामाजिक अंकेक्षण और न जाने किन–किन विषयों पर क्षमतावर्द्धन की जरूरत होती है। प्रशिक्षण माड्यूल निर्माण, प्रशिक्षक प्रशिक्षण और प्रशिक्षण की पूरी व्यवस्था की जाती है। सरकार के साथ अन्य गैर–सरकारी संगठन भी इस कार्य में ताल से ताल मिलाते नजर आते हैं और इन सब के बावजूद, बाद में भ्रष्टाचार की जो कहानियॉ निकलकर सामने आती है, उससे पंचायत की बजाय उस तंत्र पर ही सवाल खड़ा हो जाता है जो इस भ्रष्टाचार पर रोक लगाने के लिए बना हैं। पर अधिसंख्य गांवों में ग्रामीण ऐसे अनेकों कार्य आपस में मिल बैठकर कर लेते हैं। यह सब तो यहां की रग–रग में रचा बसा है।

भारत में गांधी ने जब पंचायतों को समझा और जाना तो स्वतंत्र भारत के लिए इसकी पुरजोर वकालत की और अपने असहयोग आन्दोलन के त्रिपक्षीय बहिष्कार में पंचायतों के माध्यम से कोर्ट का बहिष्कार करने का आग्रह किया। आजादी के बाद संविधान के नीति निर्देशक तत्व में इसे जगह मिली। बलबंत राय मेहता समिति के प्रतिवेदन के बाद इसे त्रिस्तरीय स्वरूप मिला। कई

और सुझाव व सुधार लाये गये। 73वें संविधान संशोधन के साथ 24 अप्रैल 1993 में पंचायतों ने एक नये युग में प्रवेश किया। ग्राम सभा को संवैधानिक स्वरूप मिला। महिलाओं के लिए कम से कम 33 प्रतिशत आरक्षण और अनुसूचित जाति और जनजाति के लिए अनुपा. तिक आरक्षण का प्रावधान किया गया। हर पाँच वर्ष पर पंचायत का चुनाव अनिवार्य कर दिया गया। लगा कि शायद पंचायतों का पुनरुद्धार हो जायेगा। कई सफलता मिली भी। बिहार ने 2006 में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण देकर एक नया इतिहास रच दिया, पर सत्ता के हस्तांतरण का काम अभी भी आधा अधूरा ही रह गया है। केरल और कर्नाटक जैसे कुछ राज्यों को यदि छोड़ दिया जाय तो सत्ता का हस्तांतरण, प्रतिनिधायन या प्रत्यायोजन अभी भी नहीं हो पाया है।

3F (Fund, Function & Functionaries) कोष, कार्य और कर्मचारी के प्रतिनिधायन के विश्लेषण से एक बात साफ हो जाती है कि जिनके पास सत्ता या ताकत है वे इसे आसानी से छोड़ना नहीं चाहते। ऐसा नहीं कि इस समस्या का आभास लोगों को नहीं था। लोकनायक जय प्रकाश नारायण ने अखिल भारतीय पंचायत परिषद के अध्यक्ष के रूप में अपनी शंका जाहिर करते हुए कहा था कि सत्ता का हस्तांतरण वास्तविक होना चाहिए दिखावटी नहीं, वरना पंचायतों की स्थिति आत्माविहीन शरीर की तरह होगी।

संविधान के अनुच्छेद 243G में राज्यों द्वारा पंचायत को सशक्त करने के लिए विभिन्न अधिकार देने की बात की गयी है। ग्यारहवीं अनुसूची में वर्णित उनतीस कार्य पंचायतों की कार्य सूची में आते हैं। राज्य सरकार के विभागों, जिनके अन्तर्गत 29 कार्य आते हैं, को कार्य मानचित्रण के आधार पर कोष, कार्य और कर्मचारी का हस्तांतरण पंचायतों को करना है। पर अधिकांश राज्यों में कार्य का हस्तांतरण ही हुआ है, कर्मचारी के मामले में भी थोड़ी सफलता मिली है पर कोष को लेकर जद्दोजहद जारी है।

योजना आयोग ने सेंटर फॉर बजट एंड गवर्नेस एकाउंटबिलिटी, नई दिल्ली, के तत्वावधान में केरल और राजस्थान राज्यों का एक अध्ययन कराया। इस अध्ययन में यह बात साफ तौर पर निकलकर आयी कि केरल ने जहाँ विकेन्द्रीकृत योजना निर्माण की प्रारंभिक समस्याओं को उचित शक्ति प्रतिनियोजित कर दूर कर लिया वहीं राजस्थान में यह समस्या कोष के प्रत्यायोजन से जूझ रही है। बिहार एवं झारखण्ड जैसे राज्यों में पंचायतों को शक्ति का प्रत्यायोजन अभी तक शैशवावस्था में ही है।

इन्स्टीच्यूट फॉर सोशल एण्ड इकोनामिक चेन्ज द्वारा किये गये शोध में भी यह बात उभर कर आयी कि पंचायतों को वित्तीय स्वायत्तता बहुत ही सीमित मात्रा में प्राप्त है। यह कैसी विडम्बना है। कहने को पंचायत को हम पंचायत सरकार कहते हैं, पर न तो उनके पास अपना वित्तीय साधन होता है और न कर्मी। ऐसे में पंचायत सरकार न होकर मात्र एक अभिकर्त्ता बन कर रह जाता है; जो केन्द्र और राज्य प्रायोजित कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करते हैं।

शक्ति के प्रतिनिधायन के संदर्भ में कई राज्यों के प्रशासनिक अधिकारियों और कर्मियों से हुई चर्चा याद आती है। अधिकांशतः यह तर्क दिया जाता है कि पंचायत प्रतिनिधि ज्यादा पढ़े लिखे नहीं होते, उन्हें अनुभव नहीं हैं, अतः उन्हें शक्ति प्रतिनिधायन करना ठीक नहीं होगा। बिहार में ऐसी ही एक चर्चा में एक वरिष्ट पदाधिकारी ने कहा था कि दो बातें साफ हो जानी चाहिए:– एक, हमने प्रजातंत्र को स्वीकार किया है तो जनप्रतिनिधि का सम्मान तो करना ही होगा। दो, अगर पंचायत और उसके प्रतिनिधि ही विकास के सबसे बड़े दुश्मन हैं तो लगभग दो दशक तक जब कई राज्यों में पंचायतें नहीं थी तो उन राज्यों में काफी विकास हो जाना चाहिए था। बिहार में 23 और झारखण्ड में 32 वर्षों बाद चुनाव हुए थे। कश्मीर में तो चुनाव कुछ वर्ष पूर्व हुआ है। 2 अक्टूबर, 1959 में राजस्थान के नागौर में त्रिस्तरीय पंचायती राज का उद्घाटन करते हुए देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि सात साल पूर्व प्रारंभ किए गये सामुदायिक विकास के काम में सफलता मिली पर उतनी नहीं जितनी मिलनी चाहिए थी। इसका मुख्य कारण था अधिकारी वर्ग पर निर्भरता। एक अधिकारी जो एक विशेषज्ञ है, विकास में सहायक हो सकता है; पर सही विकास तो तभी होगा जब विकास का काम लोग अपने हाथ में लेंगे।

समय आ गया है जब स्थानीय स्वशासन के इस गौरवशाली संस्थान को पुनर्जीवित करने का संकल्प लिया जाय। देश में आज लगभग ढाई लाख से ज्यादा पंचायती राज की संस्थाएं हैं। (618 जिला परिषद, 6598 मध्यवर्ती पंचायत/पंचायत समिति और 2,48,443 ग्राम पंचायत)। पंचायत के निर्वाचित प्रतिनिधियों की फौज (करीब 30 लाख) भारतीय फौज और सुरक्षित बल की सामूहिक संख्या लगभग पच्चीस लाख से भी कहीं ज्यादा है। आज जब ग्राम पंचायत विकास योजना जैसे अवसर पंचायतों के पास है, आवश्यक हो गया है कि इस अवसर का लाभ उठाते हुए इसे सशक्त करने कर प्रयास किया जाए। इसके लिए पंचायत से जुड़े लोगों को अपने अस्तित्व की रक्षा और देश के कुछ मुट्ठी भर लोगों की धन लोलुपता से मुक्त करने के लिए खड़ा होना होगा। तभी गांधी के इन शब्दों :

'अगर हिन्दुस्तान के हर गांव में कभी पंचायती राज कायम हुआ तो मैं अपनी इस तस्वीर की सच्चाई साबित कर सकूंगा जिसमें सबसे पहले और सबसे आखिरी दोनों बराबर होंगे या यों कहिये कि न तो कोई पहला होगा ना आखिरी।' हम साकार कर पायेंगे।

धीमी है परिवर्तन की गति

बिहार में वर्ष 2006 में पंचायत चुनावों में महिलाओं को 50 फीसद आरक्षण देने की घोषणा होते ही भिन्न–भिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएं सामने आने लगीं। कहीं स्वागत हुआ, कहीं त्यौरियां चढ़ीं मगर ज्यादातर जगहों पर जुगाड़ तेज होने लगे। परदों के पीछे भुला दी गईं घर की नारियों को सामने निकाला जाने लगा। घूंघटों ने चुनाव जीता और ताव मूंछों की बढ़ी। लेकिन इन सबके साथ–साथ कुढ़न और ईर्ष्या की ऐसी आग भी भड़की कि कई तो प्रत्याशी और कई उनके पतियों को अपनी जान गंवानी पड़ी। 2016 में हुए चुनाव आरक्षण लागू होने के दस साल बाद हुए और इस दौरान गांवों में कई ट्रेंड बदले हुए लगे। हिंसा घटी, आत्मविश्वास बढ़ा। क्या इसे औरतों के लिए समाज की स्वीकार्यता मानी जाय या वजह कुछ और है।

समाजसेवी और एक्शन एड में कार्यक्रम पदाधिकारी सुश्री शरद कुमारी के मुताबिक ये कहा जा सकता है कि पंचायत चुनावों में महिला प्रत्याशियों के प्रति हिंसा की घटनाएं कम हुई हैं लेकिन बहुत हद तक कम हो गई हैं, ये कहना सही नहीं होगा। 2006 के पंचायत चुनावों में जो हिंसा हुई वो आक्रोश और बदले की भावना से हुईं जिसमें सीधा शिक. ार महिला प्रत्याशी थीं। 2016 में भी हिंसा हुई लेकिन अब उन्हें सोच–समझकर अंजाम दिया गया और ये बड़े पदों पर जीतने वाली महिलाओं के विरुद्ध अधिक संगठित रूप में हुईं। महिला प्रत्याशियों से ज्यादा उनके पतियों पर हमला किया गया।

चूंकि अभी भी बिहार में वैसी महिला प्रतिनिधियों की संख्या ज्यादा है जो काम करने के लिए अपने पतियों पर निर्भर है इसलिए उनके पतियों पर हुआ हमला भी परोक्ष रूप से उन्हीं पर हुआ हमला माना जा सकता है। दूसरी ओर, इस वर्ष के चुनावों में राज्य सरकार का पूरा जोर बिहार की छवि सुधारने तथा सुशासन पर था इसलिए हिंसा की कई वारदातों को सामने नहीं आने दिया गया। यह आरोप भी लगते रहे कि पंचायत चुनावों के दौरान हुई हिंसा की कई वारदातों की रिपोर्टिंग नहीं की गई और उन्हें थाने के स्तर पर ही दबा दिया गया।

शरद जी खुद अब तक तीन बार पंचायत चुनाव लड़ चुकी हैं और अपने अनुभव से वे कहती हैं कि जो महिलाएं सक्षम हैं और जिनमें अपने बल पर आगे बढ़ने की क्षमता है, चुनावों में उनके लिए माहौल को दुश्कर बनाया जाता है। इसके विपरीत डमी महिला प्रत्याशियों के लिए जीत की राह आसान होती है। वे बताती हैं कि उन्हें भी वर्ष 2006 के चुनावों के दौरान धमकी दी गई और मैदान छोड़ने को कहा गया। दरअसल, शरद जी इसे संक्रमण का काल मानती हैं। उनका कहना है कि पिछले दस वर्षों में महिला जनप्रतिनिधियों को लेकर आम लोगों की धारणा में बदलाव तो आया है लेकिन उसकी गति बहुत धीमी है। लोगों में उनकी स्वीकार्यता बढ़ी है लेकिन विरोध भी कम नहीं हुआ है।

बिहार पंचायत चुनाव : 2016

बिहार में मुखिया का पद अब लाभ का पद बन चुका है। पिछले वर्षों में केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा मुखिया और सरपंचों को दिये गये खर्च तथा विकास के अधिकारों के विस्तार का असर 2016 के पंचायत चुनावों में साफ देखा गया।

- मुखिया और मुखिया पतियों की हत्या की वारदातों में वृद्धि हुई तो चुनाव में धन का जोर भी बढ़ा।
- पिछले पांच वर्षों में राज्य में 50 से ज्यादा मुखियों की हत्या की जा चुकी है जो चिंता का विषय है।
- इस बार के चुनाव में प्रत्येक पंचायत में औसतन 20 लाख रुपये खर्च किये गये जो पिछले चुनाव की तुलना में दोगुना है।
- चुनाव के पहले और इस दौरान राज्य में हुई छापेमारी में करोड़ों की राशि उम्मीदवारों के ठिकानों से प्राप्त की गई।
- पिछले सालों की तुलना में इस बार उच्च शिक्षा प्राप्त उम्मीदवार ज्यादा संख्या में जीतकर पंचायतों में आए।
- इंस्टीच्यूट ऑफ सोशल साइंसेज के अध्ययन के मुताबिक, इस बार 51 स्नातकोतर तथा 105 स्नातक प्रतिनिधि निर्वाचित हुए।
- अध्ययन के अनुसार इस बार महिला वोटरों की संख्या ज्यादा रही लेकिन उन्होंने बोगस वोटिंग भी जमकर की।

नई सोच, नए इरादे

सिर पर पगड़ी, बड़ी–बड़ी मूंछें और रौबदार चेहरा, आमतौर पर यही तो होती है सरपंच की पहचान। लेकिन समय बदला, लोगों की सोच बदली तो अब ऐसी नई क्यारियों का निर्माण हो रहा है जिनकी पौध एक नई फसल तैयार कर रही है। देश के सुदूर गांवों में भी युवा वर्ग की साहसी महिलाओं ने सरपंच जैसे पुरुष वर्चस्व वाले पद पर काबिज होकर अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत किया है। उनकी प्रशासनिक कार्यशैली और काबिलियत ने इन गांवों को एकदम नया स्वरूप प्रदान किया है।

आरती देवी

पेशे से इंवेस्टमेंट बैंकर रह चुकीं और एमबीए की डिग्री ले चुकीं आरती ने अपने हौसले से पूरे देश के सामने नई मिसाल कायम की है। वे उड़ीसा के गंजम जिले में सरपंच हैं। उन्हें 2014 के राजीव गांधी लीडरशिप अवार्ड के लिए नामित किया जा चुका है तो वहीं वे अमेरिका में एक अंतरराष्ट्रीय लीडरशिप कार्यक्रम में वक्ता के तौर पर अपनी बात रख चुकी हैं। उन्होंने राज्य सरकार के कार्य, प्रशासनिक पारदर्शिता तथा जवाबदेही पर अपने विचार रखे। आज वे अपनी पंचायत के गांवों को जनवितरण प्रणाली के फायदों के बारे में बता रही हैं जिसके बारे में पहले से वे अधिक नहीं जानते थे। आरती की पहल का ही परिणाम है कि आज ग्रामीण गेहूं, किरासन और अन्य चीजें सस्ती दरों पर ले पा रहे हैं। आरती ने पंचायत में महिलाओं के लिए वृहद साक्षरता अभियान भी चलाया जिसके बाद अब वहां आधिकारिक आवेदनों में केवल हस्ताक्षर ही लिए जा रह हैं जहां पहले अंगूठे का निशान लगाया जाता था। आरती को गंजम की लोक कला को पुनर्जीवित करने का भी श्रेय दिया जाता है।

मीना बेन

गुजरात के व्यारा जिले में अपने पंचायत की पहली महिला सरपंच हैं मीना बेन और उनकी ही कोशिशों का नतीजा है कि 65 सालों बाद उनके गांव में एक पंचायत बोर्ड गठित हुआ है और वो भी पूरी तरह महिला सदस्यों वाला। एक ऐसे गांव में जहां महिलाओं को घर से बाहर निकलने और गैर मर्दों से बात तक करने की आजादी नहीं थी, महिला सरपंच के तौर पर काम कर पाना मीना बेन के लिए आसान नहीं था। मीना के सरपंच बनने और महिलाओं को पंचायत बोर्ड में शामिल कराने के प्रयास पर गांव में लोगों की आम धारणा यही थी कि महिलाएं समाज में सबसे पीछे की कतार पर हैं और वे कभी भी नेतृत्व नहीं कर सकतीं। बकौल मीना सबसे दुखद था कि कई महिलाओं ने ही हम पर उंगलियां उठाईं और हमेशा नीचा दिखाने की कोशिश की। हमने समझ लिया था कि ऐसा चलता रहेगा और हमें इसी बीच से बेहतरी का रास्ता निकालना पड़ेगा। मीना बेन और उनकी साथियों के लिए सहारा बने वर्ल्डविजन इंडिया के स्वयं सहायता समूह और वहां से मिली सीख और हौसले ने उन्हें सफलता के शीर्ष पर पहुंचा दिया। सरपंच और सरपंच बोर्ड में महिलाओं के होने से अब गांव की महिलाएं और बच्चे अपनी समस्याओं को ज्यादा खुलकर उनके सामने रख पाते हैं। मीना बेन की कोशिशों से गांव में पहुंचने के लिए सड़क बनाई गई है और सरकारी योजनाओं की मदद से गरीबों के लिए 30 घरों का निर्माण कराया गया है। अब वे जल्दी ही गांव में एक अस्पताल बनवाने के प्रयास में भी लगी हैं।

छवि रजावत

देश की सबसे छोटी महिला सरपंच होने का तमगा पाने वाली छवि रजावत आज बदलते राजस्थान ही नहीं बल्कि बदलते भारत का भी चेहरा हैं। 2011 में सिर्फ 30 साल की उम्र में सोडा गांव की सरपंच बनने वाली छवि उच्च शिक्षित हैं और एमबीए करने के बाद मल्टीनेशनल कंपनियों में काम कर चुकी हैं। लेकिन अपने गांव की एक पुकार पर वे सब कुछ छोड़कर पंचायत चुनावों में कूद पड़ीं। अपने निर्वाचन के पांच वर्षों में वे गांव में 40 से अधिक सड़कें बनवा चुकी हैं। पानी की कमी झेल रहे गांव में जलापूर्ति करवाने और एक मात्र तालाब को साफ करवाने का काम भी किया जा रहा है। कुल 900 घरों वाली पंचायत के 800 घरों में शौचलय का निर्माण कराया जा चुका है। हालांकि छवि का यह हौसला सभी लोगों को नहीं भाया और किसी भी राजनीतिक दल और अधिकारियों के दवाब में न आने के कारण छवि पर दो बार हमला भी करवाया जा चुका है जिसमें वे गंभीर रूप से जख्मी हो गई थीं लेकिन छवि ने फिर भी हिम्मत नहीं हारी। अपने काम और हौसले के कारण ही उन्हें संयुक्त राष्ट्र में गरीबी पर अपनी राय रखने के लिए भी बुलाया जा चुका है। छवि की मेहनत का नतीजा है कि विकास के मामले में सोडा गांव की गिनती आज पूरे देश में की जाती है। छवि का मानना है कि शिक्षा और तकनीकी के माध्यम से देश के हर गांव की तस्वीर बदली जा सकती है।

सुषमा भदू

सुषमा भदू हरियाणा के तीन गांवों की सरपंच हैं। सुषमा को जितना गांव में शिक्षा और लिंग अनुपात को समान बनाने के प्रयासों के लिए जाना जाता है उससे ज्यादा घूंघट में नहीं रहने के लिए पहचाना जाता है। रूढ़िवादी और पुरुषवादी सोच वाले गांव में इतनी हिम्मत जुटा पाना आसान नहीं था लेकिन सास और पति से मिले हौसले ने उन्हें आगे बढ़ने को प्रेरित किया और फिर 2012 में 25 गांवों के दो हजार लोगों के बीच उन्होंने अपना घूंघट हटा दिया। सुषमा कहती हैं कि उन्हें अपने तीनों गांवों में पूरा सम्मान और लोगों का साथ मिला। वे सलाम खेड़ा, छबलामोरी और धानी मियां खान गांव की चुनी हुई सरपंच हैं। उनके प्रयासों के कारण ही 2011 में वहां की साक्षरता दर 69.10 फीसद पहुंच गई जो 2001 में 58 फीसद थी। इसी तरह 2001 में लिंगानुपात 1000 में 884 था जो 2011 में 903 हो गया। धानी मियां खान में एक स्कूल है और वहां ड्रॉप आउट की दर शून्य है। सुषमा से प्रभावित होकर गांव की ही आंगनबाड़ी कर्मचारी कमला ने भी अपना घूंघट हटाया और अपने दो बेटों की शादी बिना दहेज लिए की। सुषमा अपनी बेटियों को भी आधुनिक पोशाक पहनने से नहीं रोकतीं और इसे स्वाभाविक मानती हैं।

राधा देवी

राधा देवी राजस्थान के एक गांव की सरपंच हैं। गांव की जिम्मेदारी संभालने के साथ ही राधा ने सबसे पहले बच्चों को स्कूल भेजने की चुनौती स्वीकार की क्योंकि न केवल उनके गांव बल्कि पूरे राजस्थान में बच्चों के स्कूल न जाने या ड्रॉप आउट की समस्या है। राधा ने कुछ स्वयंसेवी संगठनों तथा स्वयं सहायता समूहों की मदद से स्कूल अधिकारियों और अभिभावकों से बच्चों का दाखिला करवाने की अपील की और खास तौर पर लड़कियों की पढ़ाई पर जोर दिया।

86 साल में बनीं मुखिया, नेतृत्व की लिखी नई परिभाषा

बिहार की राजधानी पटना से करीब साठ किलोमीटर दूर मसौढ़ी अनुमंडल के बेर्रा पंचायत में 86 साल की कुलबदन देवी ने मुखिया का चुनाव जीतकर नेतृत्व की नई परिभाषा गढ़ी है। झुर्रियों से लिपटी त्वचा और बुढ़ापे के बोझ के कारण झुकी कमर के बावजूद कुलबदन देवी का उत्साह नौजवानों से बढ़कर है। उन्होंने पंचायत चुनाव में लगभग तीस साल की युवा प्रत्याशी नाजमी परवीन को हराया। वो कहती हैं कि उनमें

आज भी हिम्मत बाकी है। सवालिये अंदाज में पूछती हैं कि अगर हिम्मत नहीं रहती तो क्या चुनाव लड़ती–जीतती ! कहती हैं ''तीरथ नहीं किया तो क्या यहीं तीरथ कर रही हूं।''

पांचवी पास कुलबदन देवी के पति किसान थे। भरे–पूरे घर में बहू, बेटा और पोता साथ रहते हैं। चुनाव में कुलबदन देवी के बुढ़ापे की लाठी उनका पोता गौतम बना। चुनाव प्रचार वे गौतम के साथ करती थीं। वो बताती हैं कि जवानी में मैंने सबकी सेवा की है। अब बुढ़ापे में सेवा भाव मन में उभरा है। इसीलिए सबकी बात मानकर चुनाव लड़ा। कुल. बदन पंचायत के बूढ़े– बुजुर्गों को पेंशन दिलवाने और पंचायत भवन बनवाने का आश्वासन देती हैं। गांव वालों ने बड़ी उम्र के बावजूद उनके नेतृत्व को स्वीकार किया है। वे अपनी मुखिया की वृद्धावस्था को पंचायत के कामों में बाधा पहुंचाने वाला भी नहीं मानते हैं।

जेएनयू में जर्मन साहित्य का शोध छात्र बना मुखिया

नई सोच और शिक्षा ने पुरुषों को भी लीक से हटकर काम करने को प्रेरित किया है। कैमूर के पसायन गांव के नौजवान मुखिया अमृत आनंद ऐसी ही सोच की उपज हैं। 30 साल के अमृत जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में जर्मन साहित्य में शोध कर रहे हैं। इसके पहले बेंगलुरू में वे दो साल तक मल्टीनेशनल कंपनी में काम भी कर चुके हैं। ऐसे में अपनी उच्च शिक्षा और उज्ज्वल भविष्य को छोड़कर मुखिया पद को संभालने के लिए उनका गांव लौट आना कई लोगों के गले नहीं उतर सका। लेकिन अमृत अपने इरादों पर अडिग हैं और कहते हैं कि वे वापस जाने के लिए गांव नहीं लौटे हैं।

महिला पंचायतें

दक्षिणी महाराष्ट्र के शिरोल तालुका की बुबनल ग्राम पंचायत अपने आप में अनोखी है। यहां की पंचायत में 11 सदस्य हैं और सब की सब महिलाएं। सही पढ़ा आपने। गांव के बड़े बुजुर्गों ने मिलकर इन सदस्यों को चुना है ताकि उनका गांव नई सोच के साथ नई हवा में सांसें ले सके। गांव के उल्फतबाई अंसार कहते हैं कि हम लोग जाति की राजनी.

बुबनल ग्राम पंचायत

ति से उब चुके थे और एक संरचनात्मक समाज का गठन करना चाहते थे इसलिए हम सबने मिलकर पंचायत के सारे पदों को महिलाओं को देने का फैसला किया। आज पूरे गांव को उनके फैसले पर गर्व है। ये महिलाएं न केवल अपने घरों को संभाल रही हैं बल्कि गांव के विकास पर भी पूरा ध्यान दे रही हैं। 26 साल की सोनाली शाहपुरे कहती हैं कि मैं सुबह उठकर अपने घर और बच्चों को संभालती हूं और उसके बाद गांव की सड़कों और नालों को संभालने निकल पड़ती हूं। मेरे लिए ये भी उतना ही महत्व रखते हैं। सोनाली ने 11 सदस्यों द्वारा बनाए गए गांव विकास

फंड के लिए बैंक से 50 हजार का लोन लिया है। बड़ी बात ये है कि सारे सदस्य गैर राजनीतिक पृष्ठभूमि से हैं। सभी सदस्यों ने मिलकर साढ़े पांच लाख रुपये गांव के विकास के लिए जुटा लिए हैं और अब सरकारी योजनाओं का लाभ उठाने की कोशिश में हैं।

गांव की चौपाल में तीन घंटे लंबी बैठक हुई और 29 साल की सरिता गोस्वामी को सरपंच चुन लिया गया। सरिता को साथ मिला 12 अन्य महिला पंचों का और इस तरह हरियाणा के हिसार का भिवानी रोहिलान गांव औरतों की पंचायतों वाला गांव बन गया। दो बच्चों की मां मैट्रिक पास सरिता के लिए लड़कियों की शिक्षा टॉप लिस्ट में है। इस गांव ने

भिवानी रोहिलान

सारे पंचायत सदस्यों को सर्वसम्मति से और सभी महिलाओं को चुनने का फैसला लिया था। हालांकि कुछ लोगों के परचा भरने का शक था लेकिन अंततः पूरे गांव ने एक मत होकर औरतों की पंचायत के लिए हामी भर दी। गांव की इस एकजुटता के लिए उसे सरकार की ओर से 11 लाख का इनाम भी मिला। सरपंच सरिता बताती हैं कि जैसे ही उन्हें पता लगा कि उन्हें सरपंच चुना गया है उनके दिमाग में सबसे पहले लड़कियों की शिक्षा की बात आई। इसमें कोई शक नहीं कि लड़कियों की शिक्षा विकास का सबसे कारगर हथियार है।

गुजरात की सिसवा पंचायत पूरी तरह औरतों की पंचायत है जिसकी कमान 26 साल की हिनल पटेल के हाथों में है। बड़ी बात यह है कि हिनल की टीम में 12 सदस्य हैं और सभी की उम्र 21 से 26 साल के बीच है। जिस देश में आज भी लड़कियों के खिलाफ फरमान जारी किये जाते हैं, वहां सिसवा जैसी पंचायत का होना गर्व की बात है। इन

सिसवा

लड़कियों के पंचायत संभालने के बाद से गांव में वो काम हो रहे हैं जो आज तक की पंचायतें नहीं कर पाई थीं। हिनल के नेतृत्व में गांव में पीने का साफ पानी, बेहतर सड़कें, सोलर पैनल लगाई गईं तो वहीं गांव को खुले में शौच से मुक्त भी कराया गया। अब वे अपने गांव को इंटरनेट के जरिये पूरी दुनिया से जोड़ना चाहती हैं और इसके लिए एक वेबसाइट भी शुरू करने जा रही हैं। हिनल की टीम की लड़कियां या तो नौकरीपेशा हैं या पढ़ाई कर रही हैं। हिनल खुद नर्सिंग ग्रेजुएट हैं, निशा पटेल एक मोटरबाइक कंपनी में मैनेजर हैं, राधा पटेल इंजीनियर हैं तो वहीं विरलबेन अपनी पड़ाई पूरी कर रही हैं। इनमें से हिनल को पहले भी पंचायत में होने का अनुभव है। जब वे केवल 22 साल की थीं तो अपने गांव में पंचायत चुनाव के बारे में सुना था। मेरे रुझान को देखते हुए मेरे पिता ने मुझे चुनाव लड़ने के लिए प्रोत्साहित किया।

हिवरे बाजार

करीब तीन दशक पूर्व महाराष्ट्र के अहमदनगर तालुका का हिवरे बाजार गांव भी दूसरे गांवों की तरह ही आम और अपनी जरूरतों को लेकर आंसू बहाने वाले गांवों में शामिल था। 90 के दशक में पोपटराव बाजुगी पवार यहां के सरपंच बने और उन्होंने अपने गांव को आदर्श गांव बनाने की कसम उठा ली। स्वशासन और आत्म निर्भरता के सिद्धान्त पर चलते हुए अपने समुदाय के साथ मिलकर पोपटराव ने हिवरे बाजार को बेमिसाल बना दिया। पोपटराव ने अहमदनगर विश्वविद्यालय से एम.ए. की डिग्री ली लेकिन गांव के हालात देखकर वापस लौट आए। 1990 के दशक में उन्हें सर्वसम्मति से सरपंच चुना गया। पिछले कई वर्षों से ठप पड़ी ग्राम सभा को उन्होंने पुनर्जीवित किया और उसमें गांव की मुख्य समस्याओं के बारे में बात की। उन्होंने यशवंत कृषि तथा जल संरक्षण ट्रस्ट का निर्माण किया और उसे राज्य की विकासात्मक योजना आदर्श ग्राम योजना के साथ जोड़ दिया। उनके इस प्रयास का सकारात्मक परिणाम सामने आया और आज यह गांव देश के आदर्श गांवों में गिना जाता है। पोपटराव बाजुगी पूरे महाराष्ट्र की पंचायतों में आदर्श के तौर पर जाने जाते हैं। अपने कामों के कारण ही उन्हें राज्य सरकार की कई समितियों का सदस्य बनाया गया है। उन्हें आदर्श गांव एवं सर्वश्रेष्ठ नेता 1998, सहयाद्री भूषण सम्मान 2001, कामरेड शहाने मास्टर अवार्ड 2002, राज्यस्तरीय आदर्श सरपंच अवार्ड 2002, महाराष्ट्र फाउंडेशन अवार्ड जैसे कई सम्मानों से नवाजा जा चुका है। हिवरे बाजार के लोग शिक्षा के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं और अब तक 18 लोग अपनी जमीनें स्कूल के भवन और मैदान बनाने के लिए दान कर चुके हैं। स्कूलों में उपलब्ध सुविधाओं के मामले में यह पूरे जिले में अव्वल है।

बरकीचिलमी, गोइठा, मइली, मुजफ्फरपुर

बिहार की चार पंचायतों बरकीचिलमी, मइली, गोइठा और मुजफ्फरपुर ने अपने गांवों को खुले में शौचमुक्त बनाकर आदर्श गांवों में जगह बना ली। इन गांवों को निर्मल ग्राम पुरस्कार से नजावा जा चुका है। इन गांवों ने अपने यहां हाइजीनिक शौचालय बनाने की मुहिम शुरू कर आदर्श गांव का दर्जा पा लिया। गया जिले के बरकीचिलमी गांव की रामा देवी का कहना है कि खुले में शौच का सबसे बुरा खामियाजा महिलाओं को ही भुगतना पड़ता है। उनके गांव में महिला समाख्या ने पीएचईडी विभाग और यूनिसेफ की मदद से हर घर में शौचालय का निर्माण करवाया है। हालांकि इसमें महिलाओं की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण रही क्योंकि ये वो ही थीं जिन्होंने समुदाय के लोगों को खुले में शौच न करने और अपने घरों में शौचालय बनवाने के लिए राजी किया। अपने गांव को निर्मल ग्राम पुरस्कार दिलाने और खुद अपनी इज्जत के लिए महिलाओं ने लोगों पर कड़ी निगरानी भी रखी कि वे खुले में शौच के लिए न जाएं।

पिपलान्त्री

राजस्थान का गांव पिपलान्त्री शायद देश का एकमात्र ऐसा गांव है जहां लड़कियों के जन्म पर लोग 111 पौधे लगाकर जश्न मनाते हैं। इतना ही नहीं यहां के लोग बेटियों के वयस्क होने पर उसके लिए आर्थिक सुरक्षा की व्यवस्था पर भी पूरा ध्यान देते हैं। इसीलिए लड़कियों के जन्म के बाद गांव वाले मिलकर 21 हजार रुपये इकट्ठा करते हैं और बच्ची के माता–पिता से 10 हजार लेकर बच्ची के नाम से फिक्स डिपॉजिट खोलते हैं जिसे बच्ची के 20 वर्ष के होने के बाद ही तोड़ा जा सकता है। लड़कियों की शिक्षा में कोई बाधा न आए इसके लिए गांव वाले उसके माता–पिता से एक एफिडेबिट करवाते हैं जिसमें बच्ची को पढ़ाने और वयस्क होने से पहले उसकी शादी नहीं करने का करार करवाया जाता है। गांव में लड़कियों को लेकर इस सकारात्मक पहल का श्रेय गांव के श्याम सुंदर पालीवाल को जाता है जिन्होंने अपनी बेटी को बहुत छोटी उम्र में ही खो दिया था। उस घटना से श्याम इतने व्यथित हुए कि उन्होंने पूरे गांव की बेटियों की सुरक्षा का फैसला ले लिया और उनका साथ दिया पिपलान्त्री के हरेक वासी ने। तब से हर ग्रामीण बेटियों के जन्म पर न केवल पौधे लगाने बल्कि उनकी देख–रेख करने को भी संकल्पित है। समय गुजरने के बाद ये पेड़ उनकी आर्थिक संपन्नता का जरिया भी बन गए हैं। महिलाओं को लेकर गांव वालों में इस हद तक संवेदनशीलता है कि अन्य अपराधों पर भी पूर्ण अंकुश लग गया है। रिपोर्ट के मुताबिक पिछले 7–8 वर्षों में इस गांव में कोई पुलिस केस दर्ज नहीं हुआ है।

मंजरी

स्त्री के मन की

Sulabh International
Social Service Organisation

COMFED
PRIDE OF BIHAR
Sudha

पावरग्रिड
एक 'नवरत्न' कंपनी

bansal
FOR CLASS : VI, VII, VIII, IX, X, XI & XII, IIT-JEE (MAINS & ADVANCED) & MEDICAL ASPIRANTS
TUTORIALS

THE OFFSETTERS (INDIA) PRIVATE LIMITED
design, pre-press and color offset printing

We Care
I S
INTERNATIONAL SCHOOL

आप हमें ई–मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई–मेल भी कर सकते हैं। इस विषय में विशेष जानकारी equityasia@gmail.com पर ली जा सकती है।

© इक्विटी फाउंडेशन